ISSN 2278-1633ANTIM JAN

गांधी दर्शन
अंतिम जन

वर्ष-7, अंक: 4, संख्या-54 सितम्बर 2024 मूल्य: ₹20

'हिंदी हृदय की भाषा है।' – महात्मा गांधी

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति संग्रहालय

समिति के दो परिसर हैं- गांधी स्मृति और गांधी दर्शन।

गांधी स्मृति, 5, तीस जनवरी मार्ग, नई दिल्ली पर स्थित है। इस भवन में उनके जीवन के अंतिम 144 दिनों से जुड़े दुर्लभ चित्र, जानकारियाँ और मल्टीमीडिया संग्रहालय (Museum) है। जिसमें प्रवेश निःशुल्क है।

दूसरा परिसर गांधी दर्शन राजघाट पर स्थित है। यहाँ 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश' प्रदर्शनी, डोम थियेटर और राष्ट्रीय स्वच्छता केंद्र संग्रहालय (Museum) है।

दोनों परिसर के संग्रहालय प्रतिदिन प्रातः 10 से शाम 6:30 तक खुलते हैं।
(सोमवार एवं राजपत्रित अवकाश को छोड़ कर)

गांधी दर्शन
अंतिम जन

वर्ष-7, अंक: 4, संख्या-54
सितम्बर 2024

संरक्षक
विजय गोयल
उपाध्यक्ष, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति

प्रधान सम्पादक
डॉ. ज्वाला प्रसाद

सम्पादक
प्रवीण दत्त शर्मा
पंकज चौबे

परामर्श
वेदाभ्यास कुंडू
संजीत कुमार

प्रबन्ध सहयोग
शुभांगी गिरधर

आवरण
संयोजन : अरूण सैनी

मूल्य : ₹ 20
वार्षिक सदस्यता : ₹ 200
दो साल : ₹ 400
तीन साल : ₹ 500

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति
गांधी दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली-110002
फोन : 011-23392796
ई-मेल : antimjangsds@gmail.com
2010gsds@gmail.com

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, राजघाट,
नई दिल्ली-110002, की ओर से मुद्रित एवं प्रकाशित।
लेखकों द्वारा उनकी रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण उनके अपने हैं, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, राजघाट, नई दिल्ली के नहीं।
समस्त मामले दिल्ली न्यायालय में ही विचाराधीन।

मुद्रक
पोहोजा प्रिंट सोल्यूशंस प्रा. लि., दिल्ली - 110092

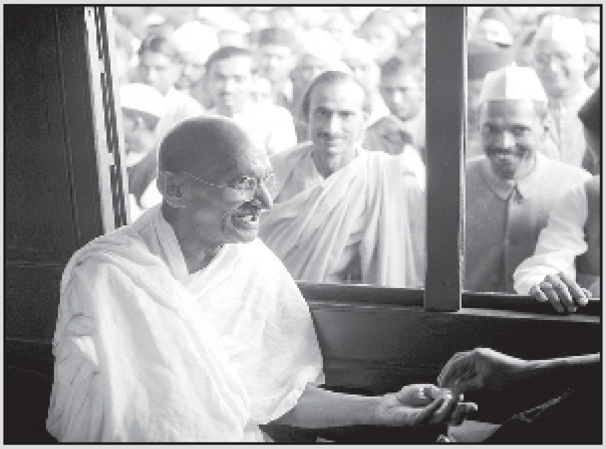

इस अंक में

धरोहर

मातृभाषा - *मोहनदास करमचंद गांधी* 5

भाषण

भारतीय चिंतन का आधार - *श्री नरेंद्र मोदी* 11

भाषा-विमर्श

मातृभाषा का आग्रह - *काका साहेब कालेलकर* 14
हिंदी में न्यायिक प्रक्रिया की ओर बढ़ते कदम - *गीता चतुर्वेदी* 17
महात्मा गांधी और हिंदी - *अतुल कुमार* 20
अस्मिता का नवीन विमर्श: प्रवासी हिंदी साहित्य - *डॉ शुभंकर मिश्र* 24
हिंदी भविष्य की भाषा! - *अखिलेश आर्येन्दु* 29
गांधीजी का हिंदी प्रेम - *संजीत कुमार* 32

साहित्य-विमर्श

साहित्य के गांधी - *डॉ लहरी राम मीणा* 34

कविता

मेरी भाषा के लोग - *केदारनाथ सिंह* 53

फोटो में गांधी 55
गांधी क्विज-5 56

बाल कहानी

दफ़्तर में लंगूर - *रजनी शर्मा बस्तरिया* 57

गतिविधियाँ 62

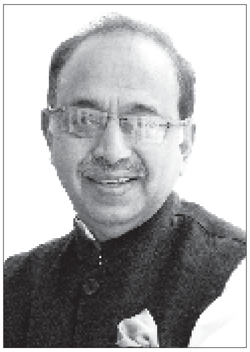

युवा भारत और गांधी

आज का भारत युवा भारत है। आने वाले समय में भारत देश में सब से ज्यादा युवा होंगे एवं भारत एक महाशक्ति के रूप में उभरेगा। ऐसे में युवाओं की ऊर्जा को सही दिशा में लगाना और उसे उत्पादकता में बदलना एक महत्वपूर्ण कार्य है।

युवाओं को समर्थ बनाने तथा राष्ट्र निर्माण में उनकी भागीदारी बढ़ाने के लिए गांधीजी हमेशा प्रयासरत रहे। वे दूरदर्शी थे। वे जानते थे कि आजादी के बाद युवाओं को काम देना एक बड़ी चुनौती रहेगी। केवल सरकारी नौकरियों के पीछे भागने से काम नहीं चलने वाला। इसलिए वे अक्षर ज्ञान के साथ स्किल सीखने पर जोर देते थे।

गांधीजी कहते थे– "उद्योग, हुनर, तन्दुरूस्ती और शिक्षा इन चारों का सुंदर समन्वय करना चाहिए। नई तालीम में उद्योग और शिक्षा तन्दुरूस्ती और हुनर का सुन्दर समन्वय है। इन सबके मेल से माँ के पेट में आने के समय से लेकर बुढ़ापे तक का एक खूबसूरत फूल तैयार होता है। यही नई तालीम है। इसलिए मैं शुरू में ग्राम–रचना के टुकड़े नहीं करूँगा, बल्कि यह कोशिश करूँगा कि इन चारों का आपस में मेल बैठे। इसलिए मैं किसी उद्योग और शिक्षा को अलग नहीं मानूँगा, बल्कि उद्योग को शिक्षा का जरिया मानूँगा और इसीलिए ऐसी योजना में नई तालीम को शामिल करूँगा।"

गांधीजी ने हाथ के हुनर के माध्यम से युवाओं को सशक्त बनाने का जो सपना देखा था, उसे बाद में भुला दिया गया। लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति हमने अपनाई और महज किताबी ज्ञान तक युवाओं को सीमित रख दिया गया।

हर्ष की बात है कि बरसों बाद मोदी जी गांधीजी के सपनों को 'न्यू इंडिया' की अवधारणा के जरिये साकार कर रहे हैं। प्रधानमंत्री ने 15 जुलाई, 2015 को पहले विश्व युवा कौशल दिवस के अवसर पर इस राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन का उद्घाटन किया। इस योजना के तहत तक 40 करोड़ युवाओं को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य है।

वर्तमान सरकार युवाओं को समर्थ बनाने, और ज्ञान से सुसज्जित करने के लिए अनेक कार्य कर रही है। बेरोजगार युवाओं के लिए स्किल इंडिया, स्टैंड अप इंडिया, डिजिटल इंडिया, स्टार्ट अप इंडिया, मेक इन इंडिया आदि अनेक योजनाएँ हैं जिनके माध्यम से युवाओं को सक्षम बनाने का कार्य किया जा रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान सरकार युवाओं की उन्नति के लिए अनेक रास्ते खोल रही है। युवक युवतियों से मेरा आह्वान है कि आप आगे आयें, जीवन की चुनौतियों का डटकर मुकाबला करें व देश और समाज को उन्नति के पथ पर अग्रसर करें।

'अंतिम जन' का सितंबर अंक अब आपके समक्ष है। इसमें संकलित सामग्री आपके लिए ज्ञानवर्धक सिद्ध होगी। यही आशा है। कृपया पत्रिका के बारे में अपने सुझाव अवश्य दें।

विजय गोयल

भारत की सांस्कृतिक धरोहर है-हिंदी

हिंदी सहित भारतीय भाषाएँ भारत की सांस्कृतिक धरोहर हैं। इसे हर कीमत पर बचाए जाने की जरूरत है। हम अपनी भाषा के प्रति सजग रहे हैं, लेकिन धीरे-धीरे एक भाषा ने हमारे मन-मस्तिष्क को गुलाम बनाने का प्रयास किया है। वह भाषा है-अंग्रेजी।

महात्मा गांधी स्वयं गुजराती थे और वे लंदन में पढ़े थे। उन्हें अंग्रेजी भी आती थी। लेकिन वे बिना जरूरत अंग्रेजी के इस्तेमाल के विरोधी थे। वे कई बार कांग्रेसजनों को बेवजह अंग्रेजी में बोलने पर डांट देते थे। उनका मानना था कि अंग्रेजी एक विदेशी भाषा है, और इसको बढ़ावा देना भारत को कई साल पीछे ले जाने जैसा है। उनका कहना था, "अंग्रेजी भाषा ने हम पर जो मोहिनी डाली है। उसके असर से हम अब तक छूटे नहीं हैं। इस मोहिनी के वश होकर हम हिंदुस्तान को आगे बढ़ने के ध्येय से रोक रहे हैं। जितने साल हम अंग्रेजी सीखने में बरबाद करते हैं, उतने महीने भी अगर हम हिंदुस्तानी सीखने की तकलीफ न उठाए, तो सचमुच कहना होगा कि जनसाधारण के प्रति अपने प्रेम की जो डींगें हम हांका करते थे, वे निरी डींगें ही हैं।"

आज हम देखते हैं कि लोग अंग्रेजी की ओर विशेष आकर्षित हैं। विशेषकर युवा पीढ़ी विशेष रूप से अंग्रेजी का इस्तेमाल करती है। यह सही है कि हमें सभी भाषाओं का सम्मान करना चाहिए लेकिन भारत में भारतीय भाषाओं का बोलबाला अवश्य रहना चाहिए। क्योंकि विदेशी भाषा अपनाने से हमारी शिक्षा, हमारी संस्कृति, हमारी मानसिकता सब पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वर्तमान में अंग्रेजी को रोजगार परक माना जाता है, यद्यपि हिंदी सम्पूर्ण रूप से रोजगार दिलाने में सक्षम भाषा है। आज नयी-नयी ऊँचाइयों को हिंदी भाषा के माध्यम से पाया जा रहा है, विज्ञान और चिकित्सा क्षेत्र में भी मजबूती से यह भाषा अपनी पकड़ बना रही है।

हिंदी भाषा के महत्व पर ही केंद्रित है इस बार का 'अंतिम जन' का यह अंक। इस अंक में हिंदी के महत्व पर विद्वान लेखकों के अनेक आलेख संकलित हैं, जो आप का ज्ञानवर्धन करेंगे, ऐसी अपेक्षा है।

डॉ. ज्वाला प्रसाद

निदेशक

आपके ख़त

"सामाजिक संरचना"

रोज - रोज,
बनते कानूनों से,
बिगड़ती जा रही है,
सामाजिक संरचना!

अपने - अपने,
फायदों के लिए,
समाज को बांट रहे,
बांटकर रेवड़ियां!

बढ़ती जा रही हैं,
बंट रहे परिवार हैं,
फासले हो रहे हैं,
दांपत्य जीवन में!

भारत में तो सदा से,
आदर्श रही हैं नारियां,
फिर भेद-भाव पूर्ण व्यवहार,
लिंग भेद बढ़ा रहे हैं कानून!

नर नारी का जोड़ा,
नहीं रहेगा प्रेम से,
तो यह सृष्टि कैसे चलेगी,
मुस्कान कैसे रहेगी!

नारी है परिवार की शान,
नारी से ही है मुस्कान,
संयुक्त परिवार से,
शोभा है भारत की!

निजी स्वार्थ के लिए,
मत बांटो समाज को,
मत करो लिंग भेद,
मत बिगाड़ो सामाजिक संरचना को!!

डॉ. सतीश "बब्बा"
चित्रकूट, उत्तर प्रदेश - 210208

विचार की पत्रिका

'अंतिम जन' का अगस्त अंक पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। अगस्त अंक में प्रकाशित आलेखों में विशेष गंभीरता है। विमर्श की यह पत्रिका, गांधीवाद को विशेष रूप से प्रचारित कर रही है। गांधी वर्तमान समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। 21वीं शताब्दी में चारो तरफ हिंसा का माहौल बना हुआ है। इस माहौल में भय और संत्रास का बोल-बाला है। हिंसा ने समाज को विकृत किया है। समाज में अहिंसा के वातावरण की आवश्यकता है। अगस्त अंक में, गांधीजी ने आदर्श राष्ट्र की बात की है।

महात्मा गांधी से किसी ने पूछा-आप अंगेजों को भारत छोड़ने की सलाह देने जा रहे हैं? गांधीजी कहते हैं "मैं अंग्रेजों को भारत छोड़ने की सलाह अवश्य देता हूँ। मेरा उनसे कहना है कि वे चले जायें। ऐसा मैं क्यों कहता हूँ? क्योंकि उन्हें हर हालत में जाना ही होगा।" भारत छोड़ो आंदोलन पर इस अंक में अन्य लेख भी बहुत सकारात्मक और जानकारी पूर्ण दिया गया है। भारत छोड़ो आंदोलन भारतीय इतिहास में मील का पत्थर साबित हुआ। यह अंक अत्यंत उपयोगी बन पड़ा है।

महेश
विनोद नगर, दिल्ली

आप भी पत्र लिखें। सर्वश्रेष्ठ पत्र को पुरस्कृत कर, उपहार दिया जाएगा।

मातृभाषा

मोहनदास करमचंद गांधी

शिक्षा के माध्यम के रूप में देशी भाषाओं का सवाल राष्ट्रीय महत्त्व का है। देशी भाषा का अनादर राष्ट्रीय आत्महत्या है। शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी भाषा जारी रखने की हिमायत करने वालों में बहुत से लोग कहते सुने जाते हैं कि अंग्रेजी शिक्षा पाने वाले भारतीय ही जनता के और राष्ट्रीय काम के रक्षक हैं। ऐसा न हो तो वह भयंकर स्थिति मानी जाएगी। इस देश में जो भी शिक्षा दी जाती है, वह अंग्रेजी भाषा के द्वारा दी जाती है। सच्ची हालत वह है कि हम अपनी शिक्षा पर जितना समय खर्च करते हैं, उसके हिसाब से नतीजा कुछ भी नहीं मिलता। हम आम लोगों पर कोई असर नहीं डाल सके। ...

इस विषय पर ताजे से ताजा बयान वाइसरॉय (लॉर्ड चेम्सफोर्ड) का है। ये साहब कोई एक रास्ता नहीं बता सके। फिर भी वे हमारे स्कूलों में देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा देने की जरूरत अच्छी तरह समझते हैं। मध्य और पूर्वी यूरोप के यहूदी दुनिया के बहुत से हिस्सों में फैल गए हैं। उन्होंने आपस के व्यवहार के लिए एक समान भाषा की जरूरत जानकर ईडिश को भाषा का दर्जा दिया है। उन्होंने दुनिया के साहित्य में मिलने वाली अच्छी से अच्छी किताबों का ईडिश में अनुवाद करने में सफलता पाई है। वे बहुतेरी दूसरी भाषाएँ अच्छी तरह जानते हैं, फिर भी उनकी आत्मा को पराई भाषा में शिक्षा मिलने से शान्ति नहीं मिली।

इसी तरह उनके छोटे से शिक्षित वर्ग ने यह नहीं चाहा कि अपनी हैसियत समझ सकने के पहले यहूदी जनता को विदेशी भाषा सीखने की तकलीफ उठानी चाहिए। इस तरह जो किसी समय एक टूटी-फूटी बोली समझी जाती थी परन्तु जिसे यहूदी बच्चे अपनी माँ से सीखते थे, उसी को उन्होंने अपने विशेष प्रयत्न से दुनिया के अच्छे से अच्छे विचारों का अनुवाद करके कीमती बना लिया है।

सचमुच यह एक अद्‌भुत काम है। यह काम आज की पीढ़ी ने ही किया है। उस भाषा का वेब्सटर के कोष में यह लक्षण दिया गया है कि वह तरह-तरह की भाषाओं से बनी हुई एक टूटी-फूटी बोली है और अलग-अलग राज्यों में बसने वाली यहूदी आपस के व्यवहार में उसका

> यदि हमारा विश्वास हमारी भाषाओं पर से उठ गया हो तो वह इस बात की निशानी है कि हमारा अपने आप पर विश्वास नहीं रहा। यह हमारी गिरी हुई हालत की साफ निशानी है और जो भाषाएँ हमारी माताएँ बोलती हैं, उनके लिए हमें जरा भी मान न हो तो किसी भी तरह की स्वराज्य की योजना, भले ही वह कितनी ही परोपकारी वृत्ति या उदारता से हमे दी जाए, हमें कभी स्वराज्य भोगने वाली प्रजा नहीं बना सकेगी।

उपयोग करते हैं। यदि अब मध्य और पूर्वी यूरोप के यहूदियों की भाषा का इस तरह वर्णन किया जाए तो उन्हें बुरा लग जाए। यदि ये यहूदी विद्वान एक पीढ़ी में ही अपनी जनता को एक भाषा दे सके हैं– जिसके लिए उन्हें गर्व है– तो हमारी देशी भाषाओं के, जो परिपक्व भाषाएँ हैं, दोष दूर करने का काम तो हमारे लिए अवश्य आसान होना चाहिए।

दक्षिण अफ्रीका हमें यही पाठ पढ़ाता है। वहाँ डच भाषा की अपभ्रंश टाल और अंग्रेजी के बीच होड़ होती थी। बोर माताओं और बोर पिताओं ने निश्चय किया था कि हम अपने बच्चों पर, जिनके साथ हम बचपन में टाल भाषा में बातचीत करते हैं, अंग्रेजी भाषा में शिक्षा लेने का बोझ नहीं डालने देंगे। वहाँ भी अंग्रेजी का पक्ष बड़ा जोरदार था, उसके हिमायती शक्ति वाले थे परन्तु बोर देशाभिमान के सामने अंग्रेजी भाषा को झुकना पड़ा था। यह जानने लायक बात है कि उन्होंने ऊँची डच भाषा को भी नामंजूर कर दिया। स्कूलों के शिक्षकों को भी, जिन्हें यूरोप की सुधरी हुई डच भाषा बोलने की आदत पड़ी हुई है, ज्यादा आसान टाल भाषा बोलने को मजबूर होना पड़ा है और दक्षिण अफ्रीका में टाल भाषा में, जो कुछ ही वर्षों पहले सादे परन्तु बहादुर देहातियों के बीच बात करने का समान साधन था, आजकल उत्तम प्रकार का साहित्य उन्नति कर रहा है।

यदि हमारा विश्वास हमारी भाषाओं पर से उठ गया हो तो वह इस बात की निशानी है कि हमारा अपने आप पर विश्वास नहीं रहा। यह हमारी गिरी हुई हालत की साफ निशानी है और जो भाषाएँ हमारी माताएँ बोलती हैं, उनके लिए हमें जरा भी मान न हो तो किसी भी तरह की स्वराज्य की योजना, भले ही वह कितनी ही परोपकारी वृत्ति या उदारता से हमे दी जाए, हमें कभी स्वराज्य भोगने वाली प्रजा नहीं बना सकेगी।

('गांधीजी की विचारसृष्टि' से) डॉ० प्राणजीवन मेहता द्वारा प्रकाशित 'हिन्दनी शालाओं एने कालेजीमां देशी भाषा शिक्षणना वाहन तरीके' नामक गुजराती पुस्तिका की यह प्रस्तावना है।

पराई भाषा का घातक बोझ

कर्वे महाविद्यालय में हैदराबाद रियासत के शिक्षा मंत्री नवाब मसूद जंग बहादूर ने देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा देने की जो जबरदस्त वकालत की थी, उसका जवाब 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' ने दिया है। उसमें से एक मित्र ने नीचे लिखा हिस्सा मेरे पास जवाब देने के लिए भेजा है:

"इन नेताओं के लेखों में जो कुछ भी कीमती और फल देने वाली चीज है, वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में पश्चिमी संस्कृति का फल है। ...पिछले 60 साल का इतिहास देखने के बजाए 100 वर्ष का इतिहास देखें तो भी हमें मालूम होगा कि राजा राममोहन राय से लगाकर महात्मा गांधी तक जिस किसी भारतीय ने किसी भी दिशा में कोई भी तारीफ के लायक काम किया हो तो वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में पश्चिमी शिक्षा का परिणाम है।"

इस उद्धरण में अंग्रेजी भाषा की शिक्षा के माध्यम के रूप में कीमत नहीं बताई गई है। बात इसी की है कि पश्चिमी सभ्यता ने खास-खास मनुष्यों पर क्या असर डाला है। पश्चिमी सभ्यता के महत्त्व या प्रभाव के बारे में नवाब साहब ने या दूसरे किसी ने भी कोई विरोध नहीं किया है। जिस चीज का विरोध किया जाता है, वह तो यह है कि पश्चिमी सभ्यता के लिए भारतीय या आर्य संस्कृति का बलिदान किया जाता है। यदि यह भी सिद्ध कर दिया जाए कि पश्चिमी शिक्षा पूर्वी या आर्य संस्कृति से बढ़कर है तो भी भारत की अत्यन्त होनहार सन्तानों को पश्चिमी शिक्षा देने और उन्हें आम लोगों से अलग करके राष्ट्रभ्रष्ट बनाने में सारे भारत का नुकसान है।

मेरे विचार से ऊपर के उद्धरण में बताए हुए पुरुषों ने जनता पर जो कुछ अच्छा असर डाला है, वह पश्चिमी सभ्यता के उलटे असर के होते हुए भी उसी हद तक डाला है, जिस हद तक वे आर्य संस्कृति को अपने में पचा सके हैं। पश्चिमी सभ्यता का उलटा असर मैं इस अर्थ में कहता हूँ कि आर्य संस्कृति का पूरा असर पड़ने में जिस हद तक वह रुकावट बना हो। मुझ पर पश्चिमी सभ्यता का जितना ऋण है, उसे खुले दिल से मैंने मंजूर किया है। फिर भी मुझे कहना चाहिए कि मैंने जनता की कुछ भी सेवा की हो तो उसका श्रेय जिस हद तक आर्य संस्कृति को मैंने अपने जीवन में पचाया है उसी को है। मैं युरोपियन-सा बनकर एक राष्ट्रभ्रष्ट आदमी के रूप में जनता के सामने खड़ा होता तो उसके रिवाजों, विचारों और उसकी इच्छाओं को

तुच्छ समझकर उसकी कुसेवा करता। जहाँ जनता ने अपनी सभ्यता को हजम नहीं किया हो, वहाँ इसका अंदाज लगाना कठिन है कि कितनी ही अच्छी होने पर भी अपने प्रतिकूल जाने वाली पराई सभ्यता के हमले का सामना करने में जनता को कितनी शक्ति खर्च करनी पड़ती है।

सारे प्रश्न पर सब तरफ से विचार करना चाहिए। यदि चैतन्य, नानक, कबीर, तुलसीदास और दूसरे कई सुधारकों को बचपन से अच्छी से अच्छी अंग्रेजी पाठशाला में रखा जाता तो क्या उन्होंने ज़्यादा काम किया होता? क्या 'टाइम्स' के लेख में बताए हुए पुरुषों ने इन सुधारकों से ज़्यादा काम किया है? महर्षि दयानंद सरस्वती किसी सरकारी यूनिवर्सिटी से एम. ए. हुए होते तो क्या वे ज़्यादा काम कर सके होते?

बचपन से पश्चिमी शिक्षा के ही असर में पले हुए आज के मौज उड़ाने वाले ऐश-आराम करने वाले और अंग्रेजी बोलने वाले राजा-महाराजाओं में एक तो ऐसा बताइए, जिसका नाम बड़ी-बड़ी मुसीबतों से टक्कर लेने वाले और अपने मावलों के साथ उन्हीं का-सा कठिन जीवन बिताने वाले शिवाजी के साथ लिया जा सके।

इन राजाओं में से किसका आचरण भय को भगाने वाले राणा प्रताप से बढ़कर है? अरे, इन्हें पश्चिमी सभ्यता के भी अच्छे नमूने कैसे माना जा सकता है? जब इन राजाओं की अपनी नगरियाँ कई दुःख-दर्दों, रोगों और संकटों से जल रही हैं, तब भी ये लंदन और पेरिस के नाच-गान में डूबे हुए हैं। जिस शिक्षा ने उन्हें अपने ही देश में परदेशी बनाया है, तो शिक्षा उन्हें अपनी प्रजा के, जिसका ईश्वर ने उन्हें शासक बनाया है, सुख-दुःख में शामिल होने के बजाए यूरोप में प्रजा के धन और अपनी आत्मा को नष्ट करना सिखाती है, उस शिक्षा में घमण्ड जैसी क्या बात है?

परन्तु पश्चिमी शिक्षा की तो यहाँ बात ही नहीं। प्रश्न तो शिक्षा के माध्यम का है। हमें जो भी ऊँची शिक्षा मिली है या जो कुछ शिक्षा मिली है वह सिर्फ अंग्रेजी भाषा द्वारा ही मिली है। इसलिए तो आज दीये जैसी साफ बात को दलीलें देकर सिद्ध करना पड़ता है कि किसी भी राष्ट्र को अपने नौजवानों में राष्ट्रीयता कायम रखनी हो तो उन्हें ऊँची और नीची सारी शिक्षा उन्हीं की भाषा में देनी चाहिए। राष्ट्र के नौजवानों को जब तक ऐसी भाषा के द्वारा ज्ञान मिलता और पचता न हो, जिसे आम लोग समझते हों, तब तक यह अपने आप सिद्ध है कि वे जनता के साथ जीता-जागता संबंध न जोड़ सकते हैं और न हमेशा उसे कायम रख सकते हैं।

पराई भाषा और उसके मुहावरों पर, जिनका इन नौजवानों की जिन्दगी में कोई काम नहीं पड़ता और जिन्हें सीखने में उन्हें अपनी मातृभाषा और उसके साहित्य की उपेक्षा करनी पड़ी है, काबू पाने में हजारों युवकों के कई कीमती वर्ष बीत जाते हैं। इसका अंदाज कौन लगा सकता है कि इससे जनता की कितनी अपार हानि होती है? इस मान्यता से अधिक बुरा वहम मैं नहीं जानता कि अमुक भाषा का तो विकास हो ही नहीं सकता या अमुक भाषा में अटपटे या तरह-तरह के विज्ञान के विचार प्रकट किए ही नहीं जा सकते। भाषा तो बोलने वालों के चरित्र और उन्नति का सच्चा प्रतिबिम्ब है।

बचपन से पश्चिमी शिक्षा के ही असर में पले हुए आज के मौज उड़ाने वाले ऐश-आराम करने वाले और अंग्रेजी बोलने वाले राजा-महाराजाओं में एक तो ऐसा बताइए, जिसका नाम बड़ी-बड़ी मुसीबतों से टक्कर लेने वाले और अपने मावलों के साथ उन्हीं का-सा कठिन जीवन बिताने वाले शिवाजी के साथ लिया जा सके।

विदेशी राज की कई बुराइयों में एक बड़ी से बड़ी बुराई इतिहास में यह मानी जाएगी कि उसमें देश के नौजवानों पर पराई भाषा के माध्यम का यह घातक बोझ डाला गया। इस माध्यम ने राष्ट्र की शक्ति को नष्ट कर दिया है, विद्यार्थियों की उम्र घटा दी है, उन्हें आम लोगों से अलग कर दिया है और शिक्षा को बिना कारण महंगी बना दिया है। यदि यह प्रथा अब भी जारी रहेगी तो इससे राष्ट्र की आत्मा का ह्रास होना निश्चित है। इसलिए शिक्षित भारतीय पराई भाषा के माध्यम की भयंकर मोहनी से जितने जल्दी छूट जाएँ, उतना ही उनके लिए और राष्ट्र के लिए अच्छा है।

(नवजीवन, 8-7-1928)

अंग्रेजी बनाम मातृभाषा

अंग्रेजी अन्तरराष्ट्रीय व्यापार की भाषा है, वह

कूटनीति की भाषा है, उसका साहित्यिक भण्डार बहुत समृद्ध है और वह पश्चिमी विचार और संस्कृति से हमारा परिचय कराती है इसलिए हममें से कुछ लोगों के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक है। वे लोग राष्ट्रीय व्यापार और अन्तर-राष्ट्रीय कूटनीति के विभाग तथा हमारे राष्ट्र को पश्चिमी साहित्य, विचार और विज्ञान की उत्तम वस्तुएँ देने वाला विभाग चला सकते हैं। वह अंग्रेजी का उचित उपयोग होगा, जबकि आज अंग्रेजी ने हमारे हृदयों में प्रिय से प्रिय स्थान हड़प लिया है और हमारी मातृभाषाओं को अपने अधिकार के स्थान से हटा दिया है।

अंग्रेजी को यह जो अस्वाभाविक स्थान मिल गया है, उसका कारण है, अंग्रेजी के साथ हमारे असमान सम्बन्ध। अंग्रेजी के ज्ञान के बिना भी भारतीयों के दिमाग का ऊँचे से ऊँचा विकास होना चाहिए। हमारे लड़कों और लड़कियों को यह सोचने के लिए प्रोत्साहित करना कि अंग्रेजी के ज्ञान के बिना उत्तम समाज में प्रवेश नहीं मिल सकता, भारत के पुरुषत्व और खास करके स्त्रीत्व की हिंसा करना है। यह इतना अपमानजनक विचार है, जो सहन नहीं किया जा सकता। अंग्रेजी के मोह से छूटना स्वराज्य का एक आवश्यक और अनिवार्य तत्त्व है।

(यंग इण्डिया, 2-2-1921)

यह मेरा निश्चित मत है कि आज की अंग्रेजी शिक्षा ने शिक्षित भारतीयों को निर्बल और शक्तिहीन बना दिया है, इसने भारतीय विद्यार्थियों की शक्ति पर भारी बोझ डाला है और हमें नकलची बना दिया है। देशी भाषाओं को अपनी जगह से हटा कर, अंग्रेजी को बैठाने की प्रक्रिया अंग्रेजों के साथ हमारे सम्बंध का एक सबसे दु:खद प्रकरण है। राजा राममोहन राय ज़्यादा बड़े सुधारक हुए होते और लोकमान्य तिलक ज्यादा बड़े विद्वान बने होते, अगर उन्हें अंग्रेजी में सोचने और अपने विचारों को दूसरों तक मुख्यत: अंग्रेजी में पहुँचाने की कठिनाई से आरम्भ नहीं करना पड़ता। अगर वे थोड़ी कम अस्वाभाविक पद्धति में पढ़-लिख कर बड़े होते तो अपने लोगों पर उनका असर जो कि अद्‌भुत था और भी ज़्यादा होता। इसमें कोई शक नहीं कि अंग्रेजी साहित्य के समृद्ध भण्डार का ज्ञान प्राप्त करने में इन दोनों को लाभ हुआ। लेकिन इस भण्डार तक उनकी पहुँच, अनकी अपनी मातृभाषाओं के जरिए होनी चाहिए थी। कोई भी देश नकलचियों की जाति पैदा करके राष्ट्र नहीं बना सकता।

(यंग इण्डिया, 27-4-1921)

मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियाँ क्यों न हों, मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूँगा, जिस तरह अपनी माँ की छाती से वही मुझे जीवन प्रदान करने वाला दूध दे सकती है। मैं अंग्रेजी को उसकी अपनी जगह पर प्यार करता हूँ। लेकिन अगर वह उस जगह को हड़पना चाहती है, जिसकी वह हकदार नहीं है तो मैं उससे सख्त नफरत करूँगा। यह बात मानी हुई है कि अंग्रेजी आज सारी दुनिया की भाषा बन गई है। इसलिए मैं उसे दूसरी भाषा के नाते जगह दूँगा लेकिन युनिवर्सिटी के पाठ्यक्रम में, स्कूलों में नहीं। वह कुछ चुने हुए लोगों के सीखने की चीज हो सकती है, लाखों-करोड़ों की नहीं।

आज जब हमारे पास प्राथमिक शिक्षा को भी देश में अनिवार्य बनाने के साधन नहीं हैं तो हम अंग्रेजी सिखाने के साधन कहाँ से जुटा सकते हैं? रूस ने बिना अंग्रेजी के विज्ञान में इतनी उन्नति कर ली है। आज हम अपनी मानसिक गुलामी की वजह से ही यह मानने लग गए हैं कि अंग्रेजी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता। मैं काम शुरू करने से पहले ही हार मान लेने की इस निराशापूर्ण वृत्ति को कभी स्वीकार नहीं कर सकता।

(हरिजनसेवक, 25-8-1946)

राष्ट्रभाषा हिंदी

इस अवसर (हिंदी उपाधि वितरण समारोह) पर मैं आपको इस बात के कुछ स्पष्ट कारण समझाऊँगा कि हिंदी - हिन्दुस्तानी ही राष्ट्रभाषा क्यों होनी चाहिए। जब तक आप कर्नाटक में रहते हैं और कर्नाटक से बाहर आपकी दृष्टि नहीं दौड़ती, तब तक आपके लिए कन्नड़ का ज्ञान काफी है। लेकिन अगर आप अपने किसी गाँव को देखेंगे तो फौरन ही आपको पता चलेगा कि आपकी दृष्टि और उसके क्षेत्र का विस्तार हुआ है। आप कर्नाटक की दृष्टि से नहीं बल्कि हिन्दुस्तान की दृष्टि से सोचने लगे हैं। कर्नाटक के बाहर की घटनाओं में आपकी दिलचस्पी बढ़ी है। लेकिन अगर भाषा का कोई सर्व साधारण माध्यम या वाहन न हो तो आपकी यह दिलचस्पी बहुत आगे नहीं बढ़ सकती। कर्नाटक वाले सिन्ध या संयुक्त प्रान्तवालों के

साथ, किस तरह अपना सम्बंध कायम कर सकते हैं या उनकी बातें सुन और समझ सकते हैं?

हमारे कुछ लोग मानते थे और शायद अब भी मानते होंगे कि अंग्रेजी ऐसे माध्यम का काम दे सकती है। अगर यह सवाल हमारे कुछ हजार पढ़े-लिखे लोगों का ही सवाल होता तो जरूर ऐसा हो सकता था। लेकिन मुझे विश्वास है कि इससे हममें से किसी को सन्तोष न होगा। हम और आप चाहते हैं कि करोड़ों लोग अन्तर्प्रान्तीय सम्बंध स्थापित करें। ऐसा सम्बंध कभी अंग्रेजी द्वारा स्थापित हो भी सके तो भी स्पष्ट है कि अभी कई पीढ़ियों तक वह मुमकिन नहीं। कोई वजह नहीं कि वे सब अंग्रेजी ही सीखें और अंग्रेजी जीविका का अचूक और निश्चित साधन तो हरगिज नहीं। अगर उसकी ऐसी कोई कीमत कभी रही भी होगी तो जैसे-जैसे अधिक संख्या में लोग उसे सीखने लगेंगे, वैसे-वैसे उसकी वह कीमत कम होगी। फिर, अंग्रेजी सीखना जितना कठिन है, हिंदी-हिन्दुस्तानी सीखना उतना कठिन है ही नहीं। अंग्रेजी सीखने में जितना समय लगेगा, उतना हिंदी-हिन्दुस्तानी सीखने में कभी नहीं लग सकता।

कहा जाता है कि हिंदी हिन्दुस्तानी बोलने और समझने वाले हिन्दू-मुसलमानों की संख्या 20 करोड़ से ज्यादा है। क्या 1 करोड़ 10 लाख कर्नाटक की भाई-बहन, अपने इन 20 करोड़ भाई-बहनों की भाषा सीखना पसन्द न करेंगे? और क्या वे उसे बहुत आसानी से सीख नहीं सकते? अभी ही एक घटना ने मेरा ध्यान खींचा है, उससे इस सवाल का जवाब मिल जाता है। आपने अभी-अभी लेडी रमण के हिंदी व्याख्यान का कन्नड़ अनुवाद सुना है। उसे सुनते समय इस बात की तरफ आप का ध्यान अवश्य आकर्षित हुआ होगा कि लेडी रमण के बहुत से हिंदी शब्द भाषान्तर में ज्यों के त्यों बरते गए थे-जैसे, प्रेम, प्रेमी, संघ, सभा, अध्यक्ष, पद, अनन्त, भक्ति, स्वागत, अध्यक्षता, सम्मेलन आदि। ये शब्द हिंदी और कन्नड़ दोनों में प्रचलित हैं।

अब मान लीजिए कि यदि कोई अंग्रेजी में इसका उल्था करता तो क्या वह इनमें से एक भी शब्द का उपयोग कर सकता? कभी नहीं। इनमें से हर एक शब्द का अंग्रेजी पर्याय श्रोताओं के लिए बिलकुल नया होता। इसलिए जब हमारे कुछ कर्नाटकी मित्र कहते हैं कि हिंदी उन्हें कठिन मालूम होती है तो मुझे हँसी आती है; साथ ही गुस्सा और बेसब्री भी कुछ कम नहीं मालूम होती। मेरा यह विश्वास है कि रोज कुछ घण्टे लगन के साथ मेहनत करने से एक महीने में हिंदी सीखी जा सकती है। मैं 67 साल का हो चुका हूँ। लोग कहेंगे कि नया कुछ सीखने की मेरी उम्र नहीं रही। लेकिन आप यह सच मानिए कि जिस समय में कन्नड़ अनुवाद सुन रहा था, उस समय मैंने यह अनुभव किया कि अगर मैं रोज कुछ घण्टे अभ्यास में दूँ तो कन्नड़ सीखने में मुझे आठ दिन से ज़्यादा समय न लगे ।

अंग्रेजी ही सीखें और अंग्रेजी जीविका का अचूक और निश्चित साधन तो हरगिज नहीं। अगर उसकी ऐसी कोई कीमत कभी रही भी होगी तो जैसे-जैसे अधिक संख्या में लोग उसे सीखने लगेंगे, वैसे-वैसे उसकी वह कीमत कम होगी। फिर, अंग्रेजी सीखना जितना कठिन है, हिंदी-हिन्दुस्तानी सीखना उतना कठिन है ही नहीं। अंग्रेजी सीखने में जितना समय लगेगा, उतना हिंदी-हिन्दुस्तानी सीखने में कभी नहीं लग सकता।

माननीय शास्त्री जी और मेरे जैसे दस-पाँच को छोड़कर बाकी के आप सब तो बिलकुल नौजवान हैं। क्या हिंदी सीखने के लिए आप एक महीने तक रोज के चार घण्टे भी नहीं दे सकते? अपने 20 करोड़ देशबन्धुओं के साथ सम्बंध स्थापित करने के लिए क्या इतना समय देना आपको ज़्यादा मालूम होता है? अब मान लीजिए कि आप में से जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते, वे उसे सीखने का निश्चय करते हैं। क्या आप मानते हैं कि प्रतिदिन चार घण्टों की मेहनत से आप एक महीने में अंग्रेजी सीख सकेंगे? कभी नहीं। हिंदी इतनी आसानी से इसलिए सीखी जा सकती है कि दक्षिण भारत की चार भाषाओं सहित हिन्दुस्तान के हिन्दू जो भाषाएँ बोलते हैं, उन सबमें संस्कृत के बहुत से शब्द हैं।

हमारा इतिहास कहता है कि पुराने जमाने में

उत्तर-दक्षिण के बीच का व्यवहार संस्कृत द्वारा चलता था। आज भी दक्षिण के शास्त्री उत्तर के शास्त्रियों के साथ संस्कृत में बातचीत करते हैं। अनेक प्रान्तीय भाषाओं में मुख्य भेद व्याकरण का है। उत्तर भारत की भाषाओं का तो व्याकरण भी एक सा है। अलबत्ता, दक्षिण भारत की भाषाओं का व्याकरण भिन्न है और संस्कृत से प्रभावित होने से पहले उनके शब्द भी भिन्न थे लेकिन अब उन्होंने भी बहुत से संस्कृत शब्द ले लिए हैं, और वे इस हद तक लिए गए हैं कि जब मैं दक्षिण में घूमता हूँ तो यहाँ की चारों भाषाओं में जो कुछ कहा जाता है, उसका सार समझ लेने में मुझे कोई कठिनाई नहीं मालूम होती ।

अब अपने मुसलमान मित्रों की बात लीजिए वे अपने-अपने प्रान्त की भाषा तो स्वभावत: जानते ही हैं; इसके अलावा वे उर्दू भी जानते हैं। दोनों का व्याकरण एक सा है; लिपि के कारण दोनों में जो फर्क है, सो है और इस पर विचार करने से मालूम होता है कि हिंदी, हिन्दुस्तानी और उर्दू, ये दोनों शब्द एक ही भाषा के सूचक हैं। इन भाषाओं के शब्द भण्डार को देखने से हमें पता चलता है कि इनके अधिकांश शब्द एक हैं इसलिए एक लिपि के सवाल को छोड़ दें तो इसमें मुसलमानों को कोई कठिनाई नहीं हो सकती। और लिपि का सवाल तो अपने-आप हल हो जाएगा।

इसलिए फिर अपनी शुरू की बात पर लौटकर मैं कहता हूँ कि अगर आपकी दृष्टि मर्यादा उत्तर में श्रीनगर से दक्षिण में कन्याकुमारी तक और पश्चिम में कराची से, पूर्व में डिब्रूगढ़ तक पहुँचती हो और इतनी वह पहुँचनी भी चाहिए तो उसके लिए आपके पास हिंदी को छोड़कर और कोई साधन नहीं। मैं आपको समझा चुका हूँ कि अंग्रेजी हमारी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती। अंग्रेजी से मुझे नफरत नहीं थोड़े पण्डितों के लिए अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक है: अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के लिए और पश्चिमी विज्ञान के ज्ञान के लिए उसकी जरूरत है लेकिन जब उसे वह स्थान दिया जाता है, जिसके योग्य वह है ही नहीं तो मुझे दु:ख होता है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसा प्रयत्न विफल ही हो सकता है। अपनी-अपनी जगह ही सब शोभा देते हैं।

आपके दिमाग में व्यर्थ ही जो एक डर घुस गया है, उसे मैं निकाल डालना चाहता हूँ। क्या हिंदी कन्नड़ की जगह सिखाई जाएगी? क्या वह कन्नड़ को उसके स्थान से हटा देगी? नहीं, उलटे मेरा दावा तो यह है कि जैसे-जैसे हम हिंदी का अधिक प्रचार करेंगे, वैसे-वैसे हम अपनी प्रान्तीय भाषाओं के अभ्यास को न केवल विशेष प्रोत्साहन देंगे बल्कि उनकी शक्ति भी बढ़ाएंगे। यह बात मैं भिन्न-भिन्न प्रान्तों के अपने अनुभव से कहता हूँ।

दो शब्द लिपि के बारे में। जब मैं दक्षिण अफ्रीका में था, तब भी मैं मानता था कि संस्कृत से निकली हुई सभी भाषाओं की लिपि देवनागरी होनी चाहिए और मुझे विश्वास है कि देवनागरी के द्वारा द्राविड़ भाषाएँ भी आसानी से सीखी जा सकती हैं। मैंने तामिल-तेलगू को और कुछ दिन तक कन्नड़ व मलयालम को भी उनकी अपनी लिपियों द्वारा सीखने का प्रयत्न किया है।

मैं आपसे कहता हूँ कि मुझे यह साफ दिखाई पड़ रहा था कि अगर इन चारों भाषाओं की लिपि देवनागरी ही होती तो मैं इन्हें थोड़े ही समय में सीख सकता था; लेकिन जब मैंने देखा कि मुझे चार-चार लिपियाँ सीखनी होंगी तो मैं मारे डर के घबरा उठा। मेरी तरह जिसे चारों भाषाएँ सीखने का उत्साह है, उसके लिए यह कितना बड़ा बोझ है? और क्या यह समझाने के लिए भी किसी दलील की जरूरत है कि दक्षिण वालों के लिए अपनी मातृभाषा के सिवा, दूसरी तीन भाषाएँ सीखने के लिए देवनागरी लिपि अधिक से अधिक सुविधाजनक हो सकती है? राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रश्न के साथ, लिपि का प्रश्न मिलाना न चाहिए। मैंने यहाँ उसका उल्लेख केवल यह दिखाने के लिए किया है कि हिन्दुस्तान की सभी भाषाएँ सीखने वाले को लिपि के कारण कितनी कठिनाई होती है।

(हरिजनबन्धु 5.7.1936)

(बंगलोर में हिंदी के उपाधि-वितरण समारोह के अवसर पर दिए गए भाषण से।)

भारतीय चिंतन का आधार

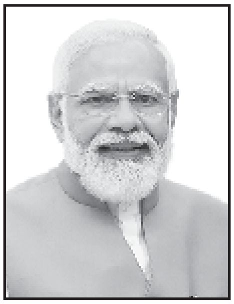

श्री नरेंद्र मोदी

मुझे खुशी है कि मुझे आज राजस्थान उच्च न्यायालय के प्लेटिनम जुबली समारोह में आप सबके बीच आने का मुझे अवसर मिला है। राजस्थान हाईकोर्ट के 75 वर्ष ऐसे समय में हुए हैं, जब हमारा संविधान भी 75 वर्ष पूरे करने जा रहा है। इसलिए ये अनेक महान लोगों की न्याय-निष्ठा और योगदानों को सेलिब्रेट करने का उत्सव भी है। ये संविधान के प्रति हमारी आस्था का उदाहरण भी है। मैं आप सभी न्यायविदों को, राजस्थान के लोगों को इस अवसर पर बधाई देता हूँ, उन्हें शुभकामनाएँ देता हूँ।

राजस्थान हाईकोर्ट के अस्तित्व से हमारे राष्ट्र की एकता का इतिहास भी जुड़ा है। आप सब जानते हैं, सरदार वल्लभ भाई पटेल ने जब 500 से ज्यादा रियासतों को जोड़कर देश को एक सूत्र में पिरोया था, उसमें राजस्थान की भी कई रियासतें थीं। जयपुर, उदयपुर और कोटा जैसी कई रियासतों के अपने हाईकोर्ट भी थे। इनके इंटिग्रेशन से राजस्थान हाईकोर्ट अस्तित्व में आया। यानी, राष्ट्रीय एकता ये हमारे judicial system का भी founding stone है। ये founding stone जितना मजबूत होगा, हमारा देश और देश की व्यवस्थाएं भी उतनी ही मजबूत होंगी।

मेरा मानना है न्याय हमेशा सरल और स्पष्ट होता है। लेकिन कई बार प्रक्रियाएँ उसे मुश्किल बना देती हैं। ये हम सबकी सामूहिक जिम्मेदारी है, कि हम न्याय को ज्यादा से ज्यादा सरल और स्पष्ट बनाएं। और मुझे संतोष है कि देश ने इस दिशा में कई ऐतिहासिक और निर्णायक कदम उठाये हैं। हमने पूरी तरह से अप्रासंगिक हो चुके सैकड़ों colonial कानूनों को रद्द किया है। आजादी के इतने दशक बाद गुलामी की मानसिकता से उबरते हुये देश ने इंडियन पीनल कोड की जगह भारतीय न्याय संहिता को adopt किया है। दंड की जगह न्याय, ये भारतीय चिंतन का आधार भी है। भारतीय न्याय संहिता इस मानवीय चिंतन को आगे बढ़ाती है। भारतीय न्याय संहिता हमारे लोकतन्त्र को colonial mindset से आजाद कराती है। न्याय संहिता की ये मूलभावना ज्यादा से ज्यादा प्रभावी बने, ये दायित्व अब हम सभी के सामने है।

बीते एक दशक में हमारा देश तेजी से बदला है। अभी हम 10 साल पहले 10वें पायदान से ऊपर उठकर दुनिया की fifth largest economy बन गए हैं। आज देश के सपने भी बड़े हैं, देशवासियों की आकांक्षाएँ भी बड़ी

राजस्थान हाईकोर्ट के अस्तित्व से हमारे राष्ट्र की एकता का इतिहास भी जुड़ा है। आप सब जानते हैं, सरदार वल्लभ भाई पटेल ने जब 500 से ज्यादा रियासतों को जोड़कर देश को एक सूत्र में पिरोया था, उसमें राजस्थान की भी कई रियासतें थीं। जयपुर, उदयपुर और कोटा जैसी कई रियासतों के अपने हाईकोर्ट भी थे।

हैं। इसलिए ये जरूरी है कि हम नए भारत के हिसाब से नए Innovation करें, और अपनी व्यवस्थाओं को आधुनिक बनाएं। ये जस्टिस फॉर ऑल, इसके लिए भी उतना ही जरूरी है। हम देख रहे हैं कि आज technology हमारे judicial system में इतना अहम रोल निभा रही है। आईटी रिवॉल्यूशन से कितना बड़ा बदलाव हो सकता है, हमारा ई-कोर्ट्स प्रोजेक्ट इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। आज देश में 18 हजार से ज्यादा कोर्ट्स कम्प्यूटराइज्ड हो चुकी हैं। मुझे बताया गया है कि नेशनल जूडिशल डेटा ग्रिड से 26 करोड़ से ज्यादा मुकदमों की जानकारी एक सेंट्रलाइज्ड ऑनलाइन प्लैटफॉर्म पर जुड़ चुकी है। आज पूरे देश की 3 हजार से ज्यादा court complexes और 1200 से ज्यादा जेलें वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग से जुड़ गई हैं। और मुझे खुशी है कि राजस्थान भी इस दिशा में काफी तेज गति से काम कर रहा है। यहाँ सैकड़ों अदालतें कम्प्यूटराइज्ड हो चुकी हैं। पेपरलेस कोर्ट्स, ई-फाइलिंग, समन के लिए इलेक्ट्रॉनिक सर्विस, वर्चुअल हियरिंग की व्यवस्था, ये कोई सामान्य बदलाव नहीं हैं। हम एक सामान्य नागरिक के दृष्टिकोण से सोचें तो दशकों से हमारे यहाँ कोर्ट के आगे 'चक्कर' शब्द, कोई बुरा मत मानना, चक्कर शब्द mandatory हो गया था। कोर्ट का चक्कर, मुकदमे का चक्कर, यानी एक ऐसा चक्कर जिसमें फंस गए तो कब निकलेंगे कुछ पता नहीं! आज दशकों बाद उस सामान्य नागरिक की पीड़ा को खत्म करने, उस चक्कर को खत्म करने के लिए देश ने प्रभावी कदम उठाए हैं। इससे न्याय को लेकर नई उम्मीद जागी है। इस उम्मीद को हमें बनाए रखना है, लगातार अपनी न्यायिक व्यवस्था में reform करते चलना है।

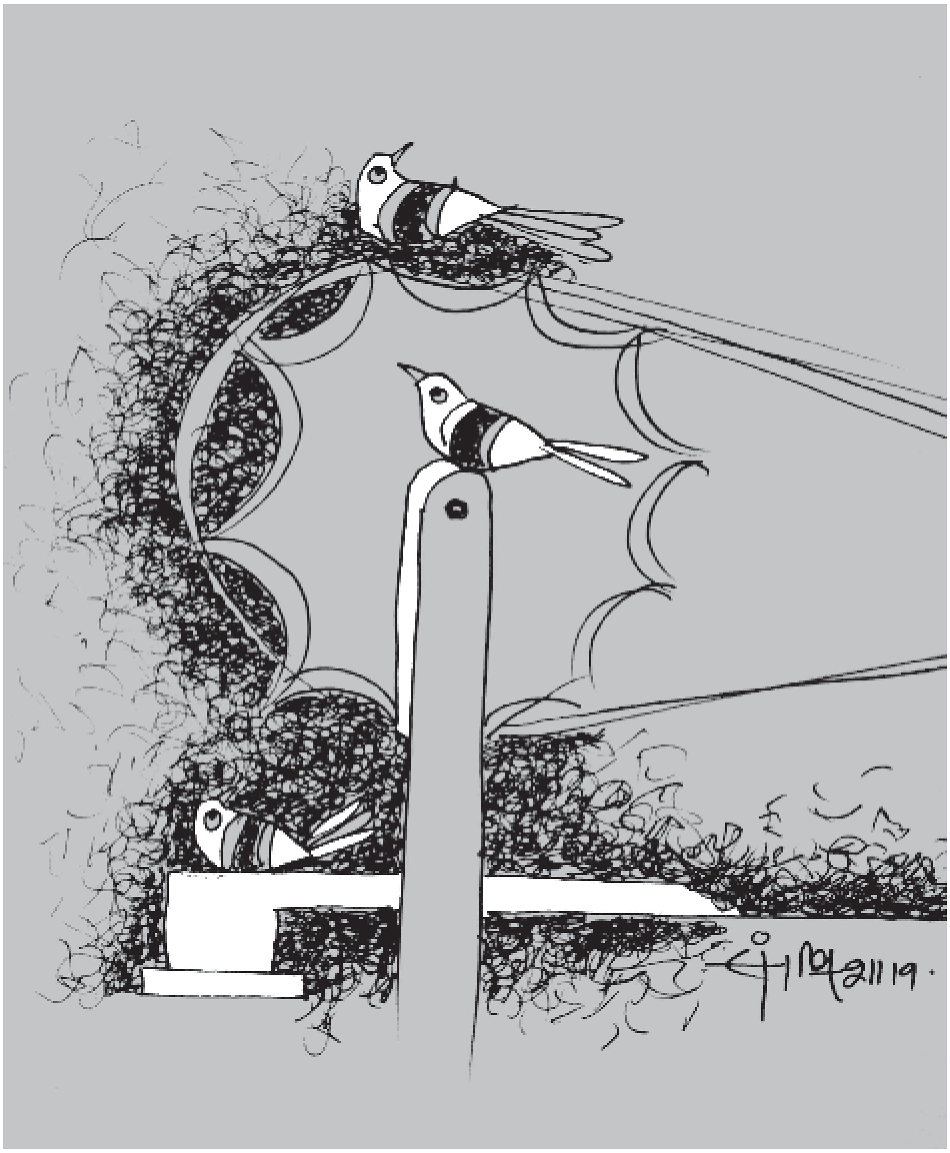

बीते कई कार्यक्रमों में आप सबके बीच मैंने लगातार मीडिएशन की सदियों पुरानी हमारी व्यवस्था का जिक्र किया है। आज देश में कम खर्चीले और त्वरित निर्णयों के लिए Alternative Dispute Mechanism बहुत अहम रास्ता बन रहा है। वैकल्पिक Dispute Mechanism की ये व्यवस्था देश में Ease of Living के साथ ही Ease of Justice को भी बढ़ावा देगी। कानूनों में बदलाव करके, नए प्रावधान जोड़कर सरकार ने इस दिशा में कई कदम उठाए

हैं। न्यायपालिका के सहयोग से ये व्यवस्थाएं और ज्यादा सशक्त होंगी।

हमारी न्यायपालिका ने निरंतर राष्ट्रीय विषयों पर सजगता और सक्रियता की नैतिक जिम्मेदारी निभाई है। कश्मीर से आर्टिकल-370 हटाने का, देश के संवैधानिक एकीकरण का उदाहरण हमारे सामने है। सी.ए.ए. जैसे मानवीय कानून का उदाहरण हमारे सामने है। ऐसे मुद्दों पर राष्ट्रहित में स्वाभाविक न्याय क्या कहता है, ये हमारी अदालतों के निर्णयों से पूरी तरह से स्पष्ट होता रहा है। हाईकोर्ट से लेकर सुप्रीम कोर्ट तक, न्यायपालिका ने अनेकों बार ऐसे विषयों पर 'राष्ट्र प्रथम' नेशन फर्स्ट के संकल्प को सशक्त किया है। जैसे आपको ध्यान होगा, अभी इसी 15 अगस्त को मैंने लालकिले से सेकुलर सिविल कोड की बात की है। इस मुद्दे पर भले ही कोई सरकार पहली बार इतनी मुखर हुई हो, लेकिन हमारी जूडिशियरी दशकों से इसकी वकालत करती आई है। राष्ट्रीय एकता के मुद्दे पर न्यायपालिका का ये स्पष्ट रुख न्यायपालिका पर देशवासियों में भरोसा और बढ़ाएगा।

21वीं सदी के भारत को आगे ले जाने में जो शब्द बहुत बड़ी भूमिका निभाने वाला है, वो है इंट्रीग्रेशन। ट्रांसपोर्ट के मोड्स का इंट्रीग्रेशन, डेटा का इंट्रीग्रेशन, हेल्थ सिस्टम का इंट्रीग्रेशन। हमारा विजन है कि देश के जो भी आईटी सिस्टम अलग-अलग काम कर रहे हैं, उन सभी का इंट्रीग्रेशन हो। पुलिस, फॉरेंसिक्स, प्रोसेस सर्विस मैकेनिज्म और सुप्रीम कोर्ट से लेकर जिला अदालतों तक सभी एक साथ जुड़कर काम करें। आज राजस्थान की सभी डिस्ट्रिक्ट कोर्ट्स में इस इंटीग्रेशन प्रोजेक्ट की शुरुआत हुई है। मैं आप सभी को इस प्रोजेक्ट की सफलता के लिए शुभकामनाएँ देता हूँ।

टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल, आज के भारत में गरीब के सशक्तिकरण का tried and tested formula बन रहा है। पिछले 10 वर्षों में इसे लेकर कई ग्लोबल एजेंसीज और संस्थाओं ने भारत की भरपूर तारीफ की है। डीबीटी से लेकर यूपीआई तक, कई क्षेत्रों में भारत का काम एक ग्लोबल मॉडल बनकर उभरा है। अपने उसी अनुभव को हमें जस्टिस सिस्टम में भी इम्पलीमेंट करना है। इस दिशा में, टेक्नोलॉजी और अपनी भाषा में लीगल डॉक्यूमैंट्स का access, ये गरीब के सशक्तिकरण का सबसे प्रभावी माध्यम बनेगा। सरकार इसके लिए दिशा नाम के Innovative Solution को भी बढ़ावा दे रही है। हमारे Law Students और अन्य Legal Expert इस अभियान में हमारी मदद कर सकते हैं। इसके अलावा देश में स्थानीय भाषाओं में लीगल डॉक्यूमेंट्स और जजमेंट्स लोगों को मिल सकें, इसके लिए भी काम होने हैं। हमारे सुप्रीम कोर्ट ने इसकी शुरुआत की है। सुप्रीम कोर्ट के मार्गदर्शन में एक सॉफ्टवेयर बना है, जिससे जूडिशल डॉक्यूमेंट्स 18 भाषाओं में ट्रांसलेट हो सकते हैं। मैं ऐसे सभी प्रयासों के लिए हमारी जूडिशियरी की भी सराहना करता हूँ।

21वीं सदी के भारत को आगे ले जाने में जो शब्द बहुत बड़ी भूमिका निभाने वाला है, वो है इंट्रीग्रेशन। ट्रांसपोर्ट के मोड्स का इंट्रीग्रेशन, डेटा का इंट्रीग्रेशन, हेल्थ सिस्टम का इंट्रीग्रेशन। हमारा विजन है कि देश के जो भी आईटी सिस्टम अलग-अलग काम कर रहे हैं, उन सभी का इंट्रीग्रेशन हो। पुलिस, फॉरेंसिक्स, प्रोसेस सर्विस मैकेनिज्म और सुप्रीम कोर्ट से लेकर जिला अदालतों तक सभी एक साथ जुड़कर काम करें। आज राजस्थान की सभी डिस्ट्रिक्ट कोर्ट्स में इस इंटीग्रेशन प्रोजेक्ट की शुरुआत हुई है।

मुझे विश्वास है हमारी कोर्ट्स, Ease of Justice को इसी तरह सर्वोच्च प्राथमिकता देती रहेंगी। हम जिस विकसित भारत का स्वप्न लेकर आगे बढ़ रहे हैं, उसमें हर किसी के लिए सरल, सुलभ और सहज न्याय की गारंटी हो, ये बहुत जरूरी है। इसी आशा के साथ, आप सभी को एक बार फिर राजस्थान हाईकोर्ट की प्लेटिनम जुबली की मैं हार्दिक बधाई देता हूँ, अनेक-अनेक शुभकामनाएँ देता हूं। बहुत-बहुत धन्यवाद!

(जोधपुर में राजस्थान उच्च न्यायालय के प्लेटिनम जयंती समारोह में प्रधानमंत्री का संबोधन, 25 अगस्त 2024)

मातृभाषा का आग्रह

काका साहेब कालेलकर

सन् 1615 की बात है। जब दक्षिण अफ्रीका का कार्य पूरा करके महात्माजी विलायत गये और वहाँ से हिन्दुस्तान लौटे, तब दक्षिण अफ्रीका के इस विजयी बैरिस्टर की मुलाकात लेने के लिए एक पारसी पत्र-प्रतिनिधि बंबई के बन्दर पर ही जाकर उन्हें मिला। मुलाकात लेने वालों में सबसे प्रथम रहने की उसकी ख्वाहिश थी।

उसने जो सवाल पूछा, उसका जवाब देने के पहले बापू ने कहा, 'भाई, तुम हिन्दुस्तानी हो, मैं भी हिन्दुस्तानी हूँ। तुम्हारी मातृभाषा गुजराती है, मेरी भी वही है। तब फिर मुझे अंग्रेजी में सवाल क्यों पूछते हो? क्या तुम यह मानते हो कि मैं दक्षिण अफ्रीका में रह आया हूं, इसलिए अपनी मातृभाषा भूल गया हूँ या मेरे जैसे बैरिस्टर के साथ अंग्रेजी में ही बोलने में शान है?'

मैं नहीं जानता पत्र-प्रतिनिधि शर्मिन्दा हुआ या नहीं, किन्तु आश्चर्य चकित तो जरूर हुआ। उसने अपनी मुलाकात के वर्णन में बापू के इस जवाब को ही प्रधान स्थान दिया था।

उसने क्या-क्या सवाल पूछे और बापू ने उनके क्या जवाब दिये, सो तो मैं भूल गया। किन्तु सब लोगों को यह जानकर सन्तोष हुआ कि हमारे देश के नेताओं में कम से कम एक नेता तो ऐसा है, जो मातृभाषा में बोलने की स्वाभाविकता का महत्त्व जानता है।

राष्ट्रभाषा और अन्य राष्ट्रीय भाषाओं के प्रति निष्ठा

गांधीजी की राजनीति और उनका अध्यात्म एक ही प्रकार के थे और दोनों का आधार कोई थियरी - बौद्धिक प्रतिपत्ति- नहीं, किन्तु ठोस अनुभव था। राजनीति में वे जानते थे कि जनशक्ति के बिना हम कुछ भी नहीं कर सकते। उनका अध्यात्म उन्हें बताता था कि विशाल जन-समुदाय के साथ हृदय की एकता स्थापित किये बिना मोक्ष नहीं मिल सकता; और यह एकता निःस्वार्थ सेवा से ही स्थापित हो सकती है। गांधीजी ने जनसेवा का प्रारम्भ किया दक्षिण अफ्रीका के अपने देशवासियों से। बिलकुल अनपढ़, असंगठित और असहाय लोगों को लेकर उन्हें जनशक्ति खड़ी करनी थी। और लोग भी कैसे? कोई तमिल, कोई तेलुगु, कोई गुजराती। धर्म के हिसाब से भी वही कठिनाई थी। कोई हिन्दू, तो कोई मुसलमान और कोई ईसाई।

गांधीजी की राजनीति और उनका अध्यात्म एक ही प्रकार के थे और दोनों का आधार कोई थियरी-बौद्धिक प्रतिपत्ति-नहीं, किन्तु ठोस अनुभव था। राजनीति में वे जानते थे कि जनशक्ति के बिना हम कुछ भी नहीं कर सकते। उनका अध्यात्म उन्हें बताता था कि विशाल जन-समुदाय के साथ हृदय की एकता स्थापित किये बिना मोक्ष नहीं मिल सकता; और यह एकता निःस्वार्थ सेवा से ही स्थापित हो सकती है।

दक्षिण अफ्रीका में भारत के गिरमिटिया मजदूरों के पीछे-पीछे चन्द व्यापारी भी गये थे। उनमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी सब थे।

ऐसे लोगों में जागृति लाने के दो उपाय थे। आत्मरक्षा के लिए उन्हें संगठित करना और परिस्थिति को समझने के लिए उन्हें शिक्षित करना। गांधीजी ने यह भी देखा कि लोगों को स्वमान-रक्षा के लिए यदि संगठित करना है, तो उनमें चारित्र्य-का तेज भी जाग्रत करना चाहिए। यह शक्ति तो धर्म और संस्कृति के बल पर ही जाग्रत हो सकती थी। इस तरह गांधीजी को सब काम बुनियाद से ही करना पड़ा।

मराठी में एक कहावत है कि, "अगर संन्यासी शादी करने चले, तो उसे सिर पर चोटी रखवाने से प्रारम्भ करना होगा।"

इस तरह दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की सेवा करते हुए स्वदेश के सवालों के प्रति उनका दुर्लक्ष्य नहीं था। दक्षिण अफ्रीका से बीच-बीच में भारत आकर उन्होंने देश का काफी भ्रमण भी किया था और समाज की नब्ज पहचान ली थी। इस अनुभव और चिन्तन के बल पर उन्होंने अपने विचार स्थिर किये और भारत के उद्धार की अपनी योजना उन्होंने संवाद के रूप में एक छोटी किताब में ग्रथित की, जिसका नाम है 'हिन्द स्वराज्य' ।

इस किताब में उन्होंने भारत के प्रधान प्रश्नों का हल बताया है। इन्हीं विचारों को लेकर उन्होंने भारत में काम शुरू किया।

गांधीजी का कहना था कि यदि भारत की जनता को जाग्रत करना है, उसमें आत्म-विश्वास पैदा करके उसे संगठित करना है, तो लोगों की भाषा के द्वारा ही हम उनके पास जा सकते हैं। लोगों की प्राणशक्ति उनकी भाषा में ही संगृहीत होती है। उस भाषा के द्वारा ही उन्हें हम जाग्रत कर सकते हैं।

दक्षिण अफ्रीका में राष्ट्रीय जीवन को संगठित करने का जो सांस्कृतिक प्रयोग गांधीजी ने चलाया, उसको उन्होंने आगे जाकर नाम दिया 'आश्रम-जीवन'। उन्हें जितने भी सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्रयोग करने थे, वे सब उन्होंने छोटे पैमाने पर अपने आश्रमों के द्वारा ही किये। इस आश्रम-प्रयोग में ईसाई और यहूदी धर्मों के गोरे लोग भी थे। उनके उत्तम स्नेही श्री केलनबैक जर्मन यहूदी थे। इस तरह उन्हें यूरोप के सवालों का भी काफी परिचय हुआ था। इन प्रयोगों में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय सवाल भी खड़े हुए।

दक्षिण अफ्रीका में बहुत से गिरमिटिया मजदूर तमिल भाषी थे, इसलिए गांधीजी ने तमिल-भाषा सीखने से प्रारम्भ किया।

भारत में आकर जब उन्होंने सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की तब हम कई महाराष्ट्री उसमें दाखिल हुए। गांधीजी ने मराठी सीखना आरम्भ किया। हिन्दू-मुस्लिम सवाल का हल खोजते हुए उन्होंने थोड़ी उर्दू भी सीख ली। भारत में लोक- जागृति करने के लिए उन्होंने हिंदी सीखी और आखिरी दिनों में, बुढ़ापे का खयाल न करते हुए, नो आखाली जाते ही बंगला भाषा और लिपि सीखना शुरू कर दिया।

किसी भी सवाल का हल ढूंढने में स्वयं अनुभव लेने का आग्रह होने के कारण वे हर किसी सवाल की कठिनाइयां भी समझ लेते थे।

गांधीजी के सुझाव के पीछे कितने चिन्तन, अनुभव, प्रयोग और तपस्या आदि तत्त्व रहते थे, यह समझने के बाद ही हम देख सकेंगे कि उनका चिन्तन कितना गहरा, ठोस और मूलगामी था ।

गांधीजी को केवल राजनैतिक अस्थायी स्वराज्य स्थापित नहीं करना था। सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक बलों की बुनियाद पर ऐसा समर्थ राष्ट्र बनाना था, जो सारी दुनिया की सांस्कृतिक सेवा भी कर सके। पश्चिम के लोगों ने वर्तमान काल में जिस संस्कृति का विकास किया है, उसके बल और सामर्थ्य- का गांधीजी को पूरा-पूरा परिचय था। तो भी उस पर वे मोहित नहीं थे। उन्होंने देख लिया था कि पश्चिम की आधुनिक संस्कृति चिर-कल्याणमयी नहीं हो सकती। वह संस्कृति भोगैश्वर्य-प्रधान है, आत्म-विमुख है, विनाश की ओर ले जाने वाली है। उससे बचने के लिए हमें अपना आध्यात्मिक साहित्य नयी शुद्ध दृष्टि से पढ़ना जरूरी है। वेद, शास्त्र, पुराण आदि के लिए संस्कृत और सन्त-साहित्य के लिए लोकभाषा इन दोनों की

आवश्यकता गांधीजी ने महसूस की थी। इस तरह गांधीजी–का 'भाषा के सवाल का हल' संस्कृति–मूलक था और जनता के जीवन के साथ उसका पूरा सम्बन्ध था। उन्नीसवीं सदी के भारतीय नेता राष्ट्र की कमजोरियों से पूरे परिचित थे । गांधीजी भी देश की कमजोरी को जानते थे। लेकिन कमजोरी के बल पर राष्ट्रीय जीवन की तिजारत थोड़े ही चल सकती है? राष्ट्र के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक बल पर ही राष्ट्र का उत्थान हो सकता है। गांधीजी ने देखा कि जनता का अनुभव और उसका चारित्र्य–तेज उसकी संस्कृति में ही रहता है और जनता की भाषा जन– संस्कृति का खजाना है। जब गांधी जी भारत आये तब लोकमान्य तिलक जैसे राष्ट्रनेता जनता की भाषा में लोक जागृति का काम करते थे और उसमें उन्हें सफलता भी मिली थी। लेकिन कांग्रेस के नेता तो अंग्रेजी में ही काम करते रहे। 'हिन्दू' आदि प्रभावशाली दैनिक पत्र भी अंग्रेजी में ही चलते थे। फलतः राष्ट्र–जागृति अंग्रेजी जानने वाले पढ़े–लिखे लोगों तक ही सीमित रही थी। ये अंग्रेजी के उपासक देश नेता लोकमान्य तिलक को "तेली–तम्बोली और भड़भूजा जैसे अनपढ़ लोगों के नेता" कहते थे। गांधी जी ने यह सारा वातावरण बदल दिया। मॉडरेट पक्ष के नेता गोखले को तो उन्होंने अपना राजनैतिक गुरु बनाया, जितनी हो सकी कांग्रेस की प्रतिष्ठा बढ़ाई और स्वयं जनता की भाषा द्वारा जनता में काम करने लगे। गुजराती– के लिए 'नवजीवन' जैसा साप्ताहिक उन्होंने चलाया; हिंदी के लिए 'हिंदी नवजीवन' शुरू किया। वे जानते थे कि जब तक हिंदीका प्रचार पूरा नहीं हुआ है तब तक अंग्रेजी के जरिये भी काम करना पड़ेगा, इसलिए उन्होंने 'यंग इंडिया' भी अपने हाथ में लिया।

गांधीजी के प्रयत्न से दक्षिण भारत, पूर्व भारत और पश्चिम भारत में विद्यार्थी, नवयुवक, स्त्रियां और सामान्य जनता धीरे–धीरे हिंदी सीखने लगी। लेकिन पुराने कांग्रेसी नेता हिंदी की ओर मुड़े ही नहीं। गांधी जी ने कांग्रेस का सारा काम– काज हिंदी में चलाने की कोशिश खूब जोरों से करके देखी। कांग्रेसी नेताओं को एक साल के अन्दर हिंदी में तैयार हो जाने का नोटिस भी दिया। लेकिन उनकी बहुत नहीं चली।

मैं मानता हूं कि प्रांतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा बढ़ाने में गांधी जी को अधिक सफलता मिली, क्योंकि देश के अधिकतर नेता गांधी जी के ही बनाये हुए थे और उनका काम जनता से ही था।

हिंदी के प्रचार में मुख्य कठिनाई थी हिंदी–उर्दू की। ये दोनों भाषाएं अथवा शैलियां अंग्रेजी के सामने दब गई थीं। लेकिन इन्हें उसकी शर्म नहीं थी। अरबी– फारसी से लदी हुई उर्दू जनता की भाषा नहीं रही। संस्कृत से लदी हुई हिंदी भी जनता को अनुप्राणित नहीं कर सकती थी। आश्चर्य की बात है कि संस्कृत से लदी हुई बंगला न केवल बंगाल की हिन्दू जनता की भाषा थी, किन्तु बंगाल के मुसलमान भी उसी भाषा के आदी और अभिमानी भी थे। मैं मानता हूं कि बंगाल के हिन्दू और मुसलमान दोनों एक ही भाषा एक ही लिपि में पढ़ते थे, इसलिए वहां भाषा की एकता आसानी से पनप सकी ।

(1) सामान्य जनता की जागृति और (2) भारतीय संमिश्र संस्कृति के द्वारा राष्ट्रीय एकता – ये दो तत्त्व राष्ट्र ने अथवा राष्ट्रीय नेताओं ने पूरे पूरे अपनाये नहीं थे, इसलिए गांधीजी की भारतीय भाषाओं के उत्कर्ष की नीति पूर्णतया जोर नहीं पकड़ सकी। आज भी वही मुश्किल कायम है। राज्य कर्मचारी पुराने जमाने–में अंग्रेजों के राज्य के प्रति निष्ठा रखते थे। अब वह निष्ठा उन्होंने नये राज्य– कर्ताओं के प्रति, यानी स्वराज्य–सरकार के प्रति पूरी तरहसे लगा दी है। लेकिन अंग्रेजी भाषा के प्रति उनकी निष्ठा अभी बदली नहीं है। अंग्रेजी भाषा जानने वाले लोगों की एक जमात बनी हुई है। राज्यतन्त्र, शिक्षातन्त्र और वृत्त–विवेचन का अखबारी तन्त्र उन्हीं के हाथ में है। जब तक ये तन्त्र परभाषा के अधीन है तब तक – स्वराज्य का अर्थ प्रजाराज्य नहीं हो सकता। हमारी आजादी की यह एक बड़ी भारी कमजोरी है। इस कमी के कारण राष्ट्र को कितना सहन करना पड़ेगा, इसका अन्दाज आज नहीं हो सकता ।

आशा इतनी ही है कि गांधीजी ने भारतीय भाषाओं के महत्त्व का जो बीज बोया है वह भविष्य–काल में अवश्य उगेगा और पनपेगा ।

हिंदी में न्यायिक प्रक्रिया की ओर बढ़ते कदम

गीता चतुर्वेदी

1967 में बाबा विश्वनाथ की नगरी वाराणसी से शुरू हुआ हिंदी आंदोलन भले ही कुछ दिनों में राजनीति की भेंट चढ़ गया हो, लेकिन उस आंदोलन का एक फायदा जरूर हुआ। करीब सौ साल से शासन-सत्ता और संभ्रांत समाज की परिधि में वर्चस्ववादी अंग्रेजी के बावजूद हिंदी केंद्रीय विमर्श का हिस्सा इस आंदोलन की वजह से जरूर बन गई। इस आंदोलन को हिंदी विरोधियों ने जितना नुकसान नहीं पहुँचाया, उससे कहीं ज्यादा नुकसान अंग्रेजी समर्थकों ने पहुँचाया। इस आंदोलन को देशी सीमाओं में भाषायी उपनिवेशवाद को बढ़ावा देने के रूप में इतनी कुशलता से स्थापित कर दिया गया कि हिंदी भाषी भी मानने लगे कि हिंदी की बात करना, हिंदी को स्थापित करने की वकालत करना एक तरह से भाषायी वर्चस्ववाद को ही बढ़ावा देना है। दिलचस्प यह है कि अंग्रेजी भाषी की बजाय हिंदी भाषी वकील और न्यायिक अधिकारियों तक को लगता था कि हिंदी में बात करना, हिंदी में न्याय की माँग करना पिछड़ी बात है। वे सोच भी नहीं सकते थे कि अंग्रेजी के बिना कानूनी बात कैसे हो सकेगी।

लेकिन अब स्थितियाँ बदलने लगी हैं। राष्ट्रभाषा को स्थापित करने और उसको वाजिब हक दिलाने के लिए आंदोलन के रूप में जो सोच मानस में रोपी गई, अब वह पल्लवित और पुष्पित होते हुए नजर आने लगी है। इसका ही असर है कि अब भारत के मुख्य न्यायाधीश भी स्वीकार करने लगे हैं कि हिंदी माध्यम से कानून की पढ़ाई होनी चाहिए। बीती 14 जुलाई के दिन लखनऊ के राम मनोहर लोहिया लॉ कॉलेज के दीक्षांत समारोह में बतौर अतिथि न्यायपालिका के अगुआ डीवाई चंद्रचूड़ का यह कहना मामूली घटना नहीं है कि कानून की पढ़ाई हिंदी में भी होनी चाहिए। चूंकि मुख्य न्यायाधीश सबसे ज्यादा हिंदी भाषी जनसंख्या वाले राज्य की राजधानी के कॉलेज में थे, इसलिए कुछ लोग कह सकते हैं कि उन्होंने जानबूझकर हिंदी के समर्थन में आवाज उठाई। वैसे यहाँ याद कर लेना चाहिए कि अरसे से न्यायपालिका में हिंदी समेत भारतीय भाषाओं में कामकाज किए जाने की माँग उठ रही है। भारतीय भाषा आंदोलन और शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास जैसी संस्थाएँ इस माँग को लेकर मुखर रही हैं और पुरजोर तरीके से यह माँग करती रही हैं। पहले ऐसी माँगों पर न्यायपालिका ही ध्यान नहीं देती

राष्ट्रभाषा को स्थापित करने और उसको वाजिब हक दिलाने के लिए आंदोलन के रूप में जो सोच मानस में रोपी गई, अब वह पल्लवित और पुष्पित होते हुए नजर आने लगी है। इसका ही असर है कि अब भारत के मुख्य न्यायाधीश भी स्वीकार करने लगे हैं कि हिंदी माध्यम से कानून की पढ़ाई होनी चाहिए। बीती 14 जुलाई के दिन लखनऊ के राम मनोहर लोहिया लॉ कॉलेज के दीक्षांत समारोह में बतौर अतिथि न्यायपालिका के अगुआ डीवाई चंद्रचूड़ का यह कहना मामूली घटना नहीं है।

थी। बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान के हाईकोर्ट में हिंदी में कामकाज की सहूलियत होने के बावजूद यहाँ के न्यायाधीश अपीलों, याचिकाओं या मुकदमों के आवेदन की हिंदी प्रतियों के साथ अंग्रेजी की प्रति भी माँगते रहे हैं। कुछ हाईकोर्ट में तो अनिवार्य व्यवस्था ही है कि हिंदी याचिका के साथ उसकी अंग्रेजी की प्रति देनी ही पड़ेगी। इस तरह भारतीय भाषाओं में न्याय देने की माँग को लगातार पीछे धकेला जाता रहा। भारतीयता की आत्मा से जुड़ी माँग को जानबूझकर पीछे किया जाता रहा। लेकिन भारतीय भाषाओं में न्याय की मांग का दबाव बढ़ता रहा। स्थानीय राजनीति में भारतीय भाषाओं और संस्कृति के बढ़ते जोर के चलते न्यायपालिका भी वाजिब के प्रति अपना आग्रह बदलने के लिए मजबूर या यूँ कहें कि सचेत होती नजर आ रही है। यही वजह है कि अब न्यायपालिका भी भारतीय भाषाओं में न्याय, बहस और कानून की उपलब्धता के साथ न्यायिक कार्यवाही में हिंदी समेत तमाम भारतीय भाषाओं को माध्यम बनाने की दिशा में सोचने लगी है।

न्यायपालिका की सोच में ऐसा बदलाव पहली बार नहीं दिख रहा है। भारत के न्यायाधीश रहते न्यायमूर्ति नजीर ने 27 दिसंबर, 2021 को हैदराबाद के एक कार्यक्रम में भी कुछ इसी तरह भारतीयता का समर्थन किया था। तब न्यायमूर्ति नजीर ने कहा था कि भारतीय न्यायिक प्रक्रिया का अब भारतीयकरण होना चाहिए। कह सकते हैं कि मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ इसी बात को अब कहीं ज्यादा ठोस नजरिए से आगे बढ़ा रहे हैं। अगर मुख्य न्यायाधीश न्याय की भाषा के रूप में अंग्रेजी के वर्चस्व में दरार लाने की सोच को अभिव्यक्त कर रहे हैं तो उसका स्वागत होना चाहिए और उम्मीद की जानी चाहिए कि हिंदी और उसकी सहोदर दूसरी स्थानीय भाषाएँ देर-सवेर अपना हक जरूर हासिल करेंगी और आम जन को उनकी अपनी भाषा में न्याय मिलेगा।

जहाँ तक हिंदी या भारतीय भाषाओं के जरिए न्याय हासिल करने की बात है तो इस प्रक्रिया की राह में सबसे बड़ी बाधा संविधान के अनुच्छेद 348 की व्यवस्था है। इस अनुच्छेद में साफ लिखा है कि जब तक संसद कानून बनाकर भारतीय भाषाओं में न्याय की बात नहीं करती, तब तक हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट अंग्रेजी में ही सुनवाई करेंगे। सीधे तौर पर देखने से ऐसा लगता है कि अगर संसद चाहे तो वह आसानी से हिंदी समेत अनुसूचित भारतीय भाषाओं में न्यायिक सुनवाई को लेकर प्रावधान कर सकती है। वैधानिक नजरिए से भी यह राह आसान लगती है, लेकिन भारतीय, खासकर हिंदी के नजरिए से मौजूदा राजनीतिक हालात को देखेंगे तो यह बात इतनी भी आसान नहीं लगती। आज के हिंदी विरोधी राजनीतिक माहौल में अगर संसद में बिना व्यापक राजनीतिक सहमति के भारतीय भाषाओं में न्यायिक सुनवाई और प्रक्रिया वाले संवैधानिक संशोधन का प्रस्ताव ला दिया जाए तो पूरी आशंका है कि बड़ा राजनीतिक वितंडा खड़ा हो जाएगा। उत्तर-दक्षिण के विभाजन की कथित राजनीति तलवार खींचकर खड़ी हो जाएगी। इस आशंका की अपनी विशेष वजह भी है। अब भी अपने देश में कई राज्य हिंदी में स्टेशन और बस स्टैंड तक के नाम रखे जाने को क्षेत्रीय अस्मिता से जोड़कर देख रहे हैं, कई राज्यों और कुछ राजनीतिक दलों को नई शिक्षा

नीति में भारतीय भाषाओं की वकालत के पीछे भी हिंदी के वर्चस्वादी राजनीति की गंध नजर आ रही हो, वहाँ उच्च न्यायपालिका में आसानी से भारतीय भाषाएँ लागू हो सकेंगी या फिर इसके लिए संसद में आसानी से संवैधानिक संशोधन कानून पास हो जाएगा, संभव नहीं लगता। कुछ दृष्टांत तो और भी गजब हैं। भारतीय भाषाओं को लेकर सवाल उठते हैं तो उसकी राह में वकील ही बाधा बनकर अड़ जाते हैं। कुछ महीने पहले गुजरात हाईकोर्ट में गुजराती में याचिका की वकालत वहाँ की बार एसोसिएशन ने की तो वहाँ के वकील ही उसके खिलाफ हो गए। इसकी वजह यह रही कि ज्यादातर वकीलों की पढ़ाई अंग्रेजी माध्यम से हुई है। गुजराती में लिखना-पढ़ना उनके लिए आसान नहीं है। इसलिए वे ही इसके विरोध में उतर आए।

गैर हिंदीभाषी राज्यों में भी कम से कम उच्च न्यायपालिका में सुनवाई के दौरान ज्यादातर प्रार्थी और मुद्दई तक को पता नहीं होता कि उनका वकील उनके बारे में अदालत के सामने क्या राय दे रहा है या फिर विरोधी वकील उनके विरोध में कैसी दलील दे रहा है।

वैसे हिंदी समेत भारतीय भाषाओं में कानून की पढ़ाई करने की वकालत करते हुए मुख्य न्यायाधीश ने जो बात कही है, वह उनकी कम से कम इस मामले में गहरी सोच को ही उजागर करती है। उत्तर प्रदेश में जमीन से जुड़े दस्तावेजों में खसरा और खतौनी जैसी शब्दावली आज भी प्रचलन में है। लेकिन अंग्रेजी माध्यम से पढ़े कानून के विद्यार्थियों को इस शब्दावली की जानकारी नहीं है। इसलिए वे इन्हें समझ भी नहीं पाते। इसलिए जरूरी है कि हिंदी ही नहीं, अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की कानूनी और दस्तावेजी शब्दावली की जानकारी कानून के छात्रों को दी जाए और स्थानीय भाषाओं में पढ़ाई इसका आसान विकल्प हो सकती है।

न्याय की भाषा में कहा जाता है कि न्याय होना ही नहीं, होते हुए दिखना भी चाहिए। अंग्रेजी के वर्चस्व के दौर में आम भारतीयों को न्याय मिलता है तो अंग्रेजी में होने की वजह से उसे पता भी नहीं चलता कि उसे न्याय मिला भी है या नहीं। इसलिए भी न्याय के लिए स्थानीय भाषाओं का प्रयोग होना चाहिए। मौजूदा हालात में हिंदीभाषी ही नहीं, गैर हिंदीभाषी राज्यों में भी कम से कम उच्च न्यायपालिका में सुनवाई के दौरान ज्यादातर प्रार्थी और मुद्दई तक को पता नहीं होता कि उनका वकील उनके बारे में अदालत के सामने क्या राय दे रहा है या फिर विरोधी वकील उनके विरोध में कैसी दलील दे रहा है। मुकदमा करने वाले को यह भी पता नहीं होता कि जज ने उसके या उसके मुकदमे के बारे में क्या कहा। और तो और, मुकदमा जीतने या हारने, सजा मिलने या माफ होने की जानकारी और उसकी असल स्थिति की भी जानकारी ज्यादातर लोगों को पता नहीं होती। उनका वकील जो भी बता दे, वही स्वीकार करना उनकी मजबूरी होती है। इसकी वजह यह है कि मुकदमे की ज्यादातर कार्यवाही अंग्रेजी में होती है और तमाम सहूलियतों के बावजूद भारत का बड़ा हिस्सा अब भी अंग्रेजी नहीं जानता-समझता।

खुशी की बात यह है कि कभी न्यायिक कार्यों में भारतीय भाषाओं और हिंदी के बढ़ते कदम में बाधा के रूप में देखी जाती रही न्यायपालिका भी खुद समझने लगी है कि भारतीयों को न्याय देना है और उन्हें न्याय मिलते हुए देखने का अनुभव भी मुहैया कराना है तो भारतीय भाषाओं में कानून की पढ़ाई होनी चाहिए। पढ़ाई शुरू हुई तो भारतीय भाषाओं में इंसाफ की राह एक कदम और आगे बढ़ जाएगी। तब वकील और जज ही नहीं, मुवक्किल भी समझ सकेगा कि उसके मुकदमे की कार्यवाही किस तरह चल रही है, उसके पक्ष या विपक्ष में कैसी दलीलें दी जा रही हैं और जज ने उसके पक्ष में फैसला सुनाया है या उसके खिलाफ। तब वह न्यायिक प्रक्रिया को कहीं ज्यादा दिल से स्वीकार कर पाएगा। जिस दिन से ऐसा होना शुरू होगा, भारतीय भाषाओं में न्याय मिलने लगेगा, भारतीय भाषाओं की जीत मानी जाएगी। भारतीय आत्मा की ओर न्यायिक कदम बढ़ने लगेंगे।

सम्पर्क : द्वारा जयप्रकाश, दूसरा तल निकट शिव मंदिर, एफ-23ए, कटवरिया सराय, दिल्ली-110016

महात्मा गांधी और हिंदी

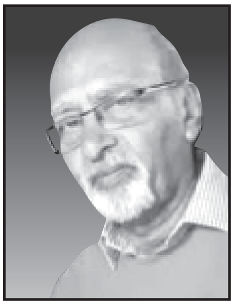

अतुल कुमार

अंग्रेजों ने भारत में अपनी पैठ बनाने के लिए हिंदुओं की पीठ पर हाथ रखा और कहा कि मुसलमान तो बाहर से आए हैं तुम हमारी भाषा सीखो और अफसर बन राज करो। बहुत से हिंदुओं ने अंग्रेजी भाषा ही नहीं सीखी बल्कि उनकी संस्कृति को भी अपनाने लगे। कांग्रेस की स्थापना के साथ पढ़े-लिखे हिंदू अंग्रेजी साहित्य पढ़कर स्वराज की बात करने लगे जो अंग्रेजों को अच्छी नहीं लगी। तब उन्होंने मुसलमानों की पीठ पर हाथ रखा और उन्हें कहा कि तुम हमारी भाषा सीखो हम तुम्हें अफसर बनायेंगे,तुम्हारा फिर से राज होगा। बस हमारे प्रति वफादार रहिए और मुसलमान कांग्रेस का विरोध करने लगा। उसे सदा हिंदू जमात कहा।

इधर हिंदुओं का एक दल पुरानी संस्कृति को अपनाने पर जोर देता था और संस्कृतनिष्ठ हिंदी का पक्षपाती था। उर्दू उनके लिए मुसलमानों की भाषा थी जो विदेशी लिपि में लिखी जाती थी। ऐसे भी लोग थे जो अंग्रेजी राज को तो अच्छा मानते थे पर अंग्रेजी भाषा और शिक्षण को राष्ट्रीयता के मार्ग की बाधा मानते थे। इसी प्रकार हिंदू, उर्दू और अंग्रेजी दोनों के विरोध में हिंदी के पक्षधर बनते जा रहे थे।

सब बंटे हुए थे। उनको यह समझाने वाला कोई नहीं था कि पठान और मुगलों के शासन काल में आपने जो राष्ट्रीयता विकसित की थी वह आज ग्राह्य नहीं हो सकती। अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने के लिए हमें हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी, यहूदी यह सब भेद भुलाने होंगे। यह उस समय की माँग थी।

इस समय मंच पर गांधीजी आए। उनका मुख्य उद्देश्य सबको साथ लेकर स्वराज की लड़ाई लड़ना था। एक राष्ट्रभाषा की खोज उनके लिए अनिवार्य थी और वह हिंदी ही हो सकती थी। ऐसी हिंदी जो सबको ग्राह्य हो। उत्तर भारत के हिंदुओं ने गांधीजी की हिंदी को पूरा समर्थन दिया पर वे उर्दू का विरोध करते रहे।

दूसरी ओर जवाहरलाल जैसे व्यक्ति थे। वे अंग्रेजी राज का विरोध करते थे पर पश्चिमी सभ्यता का नहीं। उन्हें अंग्रेजी से प्रेम था। उन्हें राष्ट्रभाषा के रूप में अंग्रेजी चाहिए थी, क्योंकि उनकी शिक्षा अंग्रेजी में ही

बहुत से हिंदुओं ने अंग्रेजी भाषा ही नहीं सीखी बल्कि उनकी संस्कृति को भी अपनाने लगे। कांग्रेस की स्थापना के साथ पढ़े-लिखे हिंदू अंग्रेजी साहित्य पढ़कर स्वराज की बात करने लगे जो अंग्रेजों को अच्छी नहीं लगी। तब उन्होंने मुसलमानों की पीठ पर हाथ रखा और उन्हें कहा कि तुम हमारी भाषा सीखो हम तुम्हें अफसर बनायेंगे,तुम्हारा फिर से राज होगा। बस हमारे प्रति वफादार रहिए और मुसलमान कांग्रेस का विरोध करने लगा।

हुई थी। गांधीजी के प्रभाव में आकर जवाहरलाल ने हिंदी को स्वीकार अवश्य किया पर अंतरमन में अंग्रेजी ही शासन करती रही।

मुसलमान भी गांधीजी की हिंदी स्वीकार न कर पा रहे थे। राष्ट्रवादी मुसलमानों का कहना था, "एक बात ध्यानपूर्वक समझ लीजिए, उत्तर भारत में हमारा राज था। आज जिस तरह देश पर अंग्रेजी का प्रभाव है, इसी तरह उस समय हिंदू-मुसलमान सभी पर्शियन सीखते थे। संस्कारिता के लिए दुनिया भर में यही भाषा मशहूर थी। इस देश के लोग पर्शियन और हमारी धर्म भाषा अरबी निष्ठा पूर्वक सीखने लगे थे। हमारा राज फारसी में चलता था।" "यह सब होते हुए भी प्रजा का महत्व पहचान कर जनता की भाषा खड़ी बोली को हमने राजभाषा स्वीकार किया। आज जैसे भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी के शब्द घुस गए हैं इस तरह खड़ी बोली में अरबी फारसी के शब्द प्रचुर मात्रा में घुसे। उस भाषा का नाम हुआ उर्दू। इस देश में राज करना है तो उर्दू जैसी प्रजा भाषा को ही राजभाषा बनाना चाहिए। ऐसा तय करके हमने उर्दू को राजभाषा करार दिया।"

यह उस समय के मुस्लिम मित्रों की भावना थी तो यह निश्चित जाना गया कि यदि अरबी-फारसी शब्दों के बहिष्कार की बात छोड़ भी दी जाए, फिर भी मुसलमान पूरे उत्साह से हिंदी प्रचार में सहयोग नहीं देंगे।

ऐसी स्थिति में प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी पंडित सुंदरलाल ने गांधीजी से कहा, "हिंदी की व्याख्या आप चाहे जितनी व्यापक करें उसमें सारे के सारे उर्दू शब्दों को स्वीकार करें तो भी जब तक उसका नाम हिंदी है तब तक आपकी राष्ट्रभाषा की प्रवृत्ति हिंदू राज्य की प्रवृत्ति मानी जाएगी। इसलिए हिंदी और उर्दू दोनों नाम छोड़कर पूर्ण राष्ट्रीय व्याख्या की राष्ट्रभाषा को हिंदुस्तानी नाम दीजिए और उसके लिए नागरी तथा उर्दू दोनों लिपि मान्य रखिए। तब ही मुसलमानों की शंका दूर होगी।"

स्वतंत्रता संग्राम की दृढ़ता को बनाए रखने और राष्ट्रीय एकता को ध्यान में रखते हुए गांधीजी को सुंदरलाल जी की बात जंची और उन्होंने उसी के अनुसार अपने हिंदी प्रचार के रूप में कुछ परिवर्तन करने का विचार बनाया और हिंदुस्तानी नाम को अपनाने पर सहमत हुए।

कुछ मुसलमान साफ-साफ कहते रहे हैं,"हिंदुस्तानी की आड़ में गांधीजी हिंदी चलाना चाहते हैं । इसलिए हमें उसमें शामिल नहीं होना चाहिए।"

उत्तर भारत के लोग कहते हैं कि हिंदुस्तानी की आड़ में उर्दू चलेगी। सुभाष बोस की आजाद हिंद फौज की भाषा भी हिंदी-हिंदुस्तानी थी।

1916 में गांधीजी ने हिंदी और देवनागरी को अपनाने का प्रस्ताव रखा था जिसका समर्थन दक्षिण के अनेक लोगों ने किया। रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने लिखा, "आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल के समान है जिसका एक-एक दल एक-एक प्रांतीय भाषा और उसका साहित्य, संस्कृति है। किसी एक को मिटा देने से उस कमल की शोभा नष्ट हो जाएगी। हम चाहते हैं कि भारत की सब प्रांतीय बोलियाँ, जिनमें सुंदर साहित्य की सृष्टि हुई है, अपने-अपने घर में रानी बनकर रहे। प्रांत के जनगण की हार्दिक चिंता की प्रकाश भूमि स्वरूप कविता की भाषा होकर रहें और आधुनिक भाषाओं के हार के मध्य मणि हिंदी भारत-भारती होकर विराजती रहे।"

मुसलमान भी गांधीजी की हिंदी स्वीकार न कर पा रहे थे। राष्ट्रवादी मुसलमानों का कहना था, "एक बात ध्यानपूर्वक समझ लीजिए, उत्तर भारत में हमारा राज था। आज जिस तरह देश पर अंग्रेजी का प्रभाव है, इसी तरह उस समय हिंदू-मुसलमान सभी पर्शियन सीखते थे। संस्कारिता के लिए दुनिया भर में यही भाषा मशहूर थी।

गुजरात शिक्षा सम्मेलन के सभापति पद से बोलते हुए गांधीजी ने कहा था की राष्ट्रभाषा वही हो सकती है जो सरकारी कर्मचारियों के लिए सहज और सुगम हो। जो धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में माध्यम बनने की शक्ति रखती हो। जिसके बोलने वाले बहुसंख्यक हो। जो पूरे देश के लिए सहज रूप से उपलब्ध हो। अंग्रेजी किसी भी तरह से इस कसौटी पर खरी नहीं उतर पाती। उनके अनुसार हिंदी ही एकमात्र वह भाषा थी जो उनके द्वारा निर्धारित आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी।

गांधीजी उस समय लोगों से कहते थे, 'हम हिंदी को उसका उचित स्थान दिलाने की बात ही करते रहे और स्वयं अपने जीवन में उसकी उपेक्षा की।'

गांधीजी ने सदा हमें अपने देश, अपनी भाषा और अपनी संस्कृति पर गर्व करने की सीख दी थी।

गांधीजी यह भी जानते थे कि उनके जाने के बाद देश की बागडोर अंग्रेजी के कायल और पश्चिम के उपासक देश भक्तों के हाथ में जाने वाली है। इसलिए वे बार–बार सावधान करते रहे कि अगर राज–काज से और शिक्षा के क्षेत्र से अंग्रेजी को तुरंत नहीं हटाया तो अंग्रेजी इस देश में ऐसा मजबूत स्थान लेकर बैठेगी कि उसे दूर करने के लिए जनता को दूसरी क्रांति करनी पड़ेगी ।

शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी को समृद्ध करने की दिशा में महात्मा मुंशीराम ने बहुत कार्य किया। उनके अनुरोध पर बहुत से व्यक्तियों ने आज से 100 वर्ष से अधिक पूर्व (1908) में रसायन–शास्त्र, वनस्पति–शास्त्र, विद्युत–शास्त्र, भौतिक और रसायन विज्ञान जैसे विषयों की पाठ्य पुस्तक तैयार की। उनमें प्रमुख थे सर्व श्री महेश चरण सिन्हा (1882–1942) और गोवर्धन शास्त्री (1891–1927)। बाद में गुरुकुल के स्नातकों सहित अनेकानेक इस क्षेत्र में आए। विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में अनुवाद द्वारा हिंदी साहित्य को समृद्ध करने वाले विद्वानों में भी गुरुकुल के स्नातक प्रमुख रहे। प्रारंभ में यह काम करना निश्चय ही कठिन रहा होगा। आज भी अच्छी पुस्तकों का अभाव खटकता रहता है तो आज से 100 वर्ष पहले क्या स्थिति रही होगी। पर महात्मा मुंशीराम तो वास्तव में कर्म योगी थे। उन्होंने यह प्रमाणित करके कि हिंदी के माध्यम से किसी भी विषय में उच्च से उच्च शिक्षा दी जा सकती है, बड़े–बड़े विश्वविद्यालय के अधिकारियों को चकित कर दिया। तत्कालीन कोलकाता विश्वविद्यालय आयोग के प्रधान श्री सेडलर ने स्पष्ट शब्दों में कहा था, "मातृभाषा द्वारा उच्च शिक्षा देने के प्रशिक्षण में गुरुकुल को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है ।"

यही सब देखकर गांधीजी ने महामना पंडित मदन मोहन मालवीय से कहा था, गंगा के किनारे हरिद्वार के जंगलों में गुरुकुल खोलकर जब स्वामी श्रद्धानंद हिंदी के माध्यम से उच्च शिक्षा दे सकते हैं तो वाराणसी की गंगा के किनारे बैठकर आप इन बच्चों को टेम्स का पानी क्यों पिला रहे हैं।

सन 1917 में राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन कोलकाता में हुआ। उसी के साथ हुआ राष्ट्रभाषा सम्मेलन। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक इसके सभापति थे। कांग्रेस और बंगाल के सभी नेता अंग्रेजी में बोले। सरोजिनी नायडू और सभापति भी अंग्रेजी में बोले, लेकिन जब गांधीजी बोलने खड़े हुए तो वे उस समय जैसी भी हिंदी जानते थे हिंदी में ही बोले। उन्होंने कहा, "लोकमान्य हमारे सबसे बड़े नेता हैं वे चाहे जो करें वह महत्व का है। परंतु राष्ट्रभाषा का सभापति यदि विदेशी भाषा में बोले तो यह राष्ट्रभाषा सम्मेलन कैसा?"

लोकमान्य बोले, "आप ठीक कह रहे हैं पर मेरी मजबूरी है, मैं जरा भी हिंदी नहीं जानता ।"

गांधीजी विनम्रता से बोले, "आप मराठी जानते हैं, संस्कृत जानते हैं यह हमारे देश की भाषाएँ हैं और यह सरोजिनी को देखो बहुत अच्छी उर्दू जानती है यह भी क्या अंग्रेजी में ही बोल सकती है।"

उस क्षण के बाद हवा बदल गई, एक व्यक्ति भी अंग्रेजी में नहीं बोला। संध्या के समय लोकमान्य एक सार्वजनिक सभा में भाषण देने गए। वहाँ हिंदी में बोलते हुए उन्होंने कहा, "आज मैं पहले–पहल हिंदी में बोल रहा हूँ। मेरी भाषा संबंधी कितनी गलतियाँ होंगी यह मैं नहीं जानता, पर मैं मानता हूँ कि हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी है और हमें इसमें ही अपना काम करना चाहिए।"

नंदी (बैंगलोर) प्रवास के अवसर पर एक दिन सुविख्यात वैज्ञानिक सर चंद्रशेखर रमन गांधीजी से मिलने आए। उनकी पत्नी वहाँ पहले से मौजूद थी और वे महात्मा जी से हिंदी में बात कर रहीं थीं। सर चंद्रशेखर ने हिंदी की खिल्ली उड़ाने के अंदाज में पूछा, "यह हिंदी क्या कुछ उपयोगी भी है ?"

गांधीजी ने कहा, "इसमें संदेह ही क्या है। हिंदी उतनी ही उपयोगी है जितनी यह आपकी साइंस ।"

इधर–उधर की बातें करते हुए सर चंद्रशेखर ने कहा, "हिंदुस्तान के जनसाधारण की भाषा कौन सी हो सकती है, क्या यह अंग्रेजी नहीं हो सकती ?"

शायद यह बात उन्होंने उतनी गंभीरता से नहीं कही

थी जितनी गांधीजी को चिढ़ाने के लिए। गांधीजी बोले, "हिंदुस्तान के करोड़ों आदमी जो बगैर सीखे ही हिंदी जानते हैं अगर वे अंग्रेजी सीखने का प्रयत्न करें तो क्या आपके ख्याल में उनके लिए दुर्भाग्य की बात न होगी।"

सर चंद्रशेखर तुरंत बोले, "मुझे खुशी है कि राष्ट्रभाषा हिंदी बड़ी तेजी से भारत में प्रगति कर रही है। मैं हिंदी भी जानता हूँ। महात्मा जी मैं उसे अच्छी तरह समझ लेता हूँ। मालवीय जी महाराज मेरे हिंदी के गुरु हैं। जब मैं काशी में था तब कभी-कभी घंटों उनकी सुंदर हिंदी सुनने का मुझे अवसर मिलता था और मुझे हिंदी सीखनी ही चाहिए थी पर मैं अभी तक हिंदी ठीक से बोल नहीं पाता।"

गांधीजी उड़ीसा का भ्रमण कर रहे थे। किसी ने उनसे पूछा, "आप अंग्रेजी शिक्षा का विरोध करते हैं लेकिन आप इतने बड़े अंग्रेजी पढ़कर ही हुए हैं।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "महाराज, न तो मैं कोई विशेष पढ़ा हुआ हूँ और ना कोई बड़ा आदमी हूँ। लेकिन अपने बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता। लेकिन हाँ, इसमें कोई शक नहीं कि तिलक महाराज ने यदि अंग्रेजी के माध्यम द्वारा शिक्षा न पाकर मातृभाषा के माध्यम से पाई होती तो कौन कह सकता है कि वे जितने बड़े हुए उससे भी बढ़कर ना होते। अंग्रेजी की शिक्षा पाकर वे गीता के इतने बड़े भाष्यकार हुए। मातृभाषा के द्वारा शिक्षा पाकर तो न जाने कितने बड़े विद्वान होते।"

एक क्षण रुक कर फिर बोले, "अच्छा स्वामी शंकराचार्य या तुलसीदास जी क्या अंग्रेजी पढ़े हुए थे? इसमें कोई शक नहीं कि इस देश में अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग भी महान हुए हैं, किंतु वे अंग्रेजी के कारण ही महान नहीं हुए हैं, हुए भी हों तो उनकी संख्या इतनी कम है कि उंगलियों पर गिनी जा सकती है। प्राचीन काल में हमारे देश में इतने ऋषि-महर्षि हुए, वे सब हमारी ही शिक्षा की उपज थे। जिन लोगों को आप अंग्रेजी पढ़ने के कारण बड़ा हुआ मानते हैं क्या वे उनसे बढ़कर महान और उनसे अधिक संख्या में है ?"

सुप्रसिद्ध जैन विद्वान पंडित सुखलाल अंग्रेजी सीखने के लिए बहुत उत्सुक थे। किसी प्रसंग में उन्होंने गांधीजी को लिखकर पूछा कि वे किस तरह और किस स्थान पर यह भाषा सीखने की सुविधा पा सकेंगे।

नर्मदा जेल से गांधीजी का उत्तर आया, "तुम्हारी अंग्रेजी सीखने की विचारधारा के पीछे दोष तो है, लेकिन अगर तुमने दृढ़ निश्चय ही कर लिया है तो अवश्य सीखो। इस काम के लिए शांतिनिकेतन ठीक रहेगा।"

इस संबंध में कुछ वर्ष पूर्व भी पंडित जी ने गांधी जी से विचार विनिमय किया था। इसी संदर्भ में इस उत्तर का महत्व है। उस समय गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था, "अंग्रेजी भाषा तो पृथ्वी जैसी विशाल है। अगर तुम जैसे लोग उसमें शक्ति खर्च न करें तो कुछ बिगड़ेगा नहीं। तुम जो शास्त्र जानते हो उन संस्कृत, प्राकृत और पाली के शास्त्रों के ठीक-ठीक अर्थ और तत्वों को प्रकाशित करना कोई सरल काम नहीं। वह तो अनंत शक्ति का आकांक्षी है। इसलिए उनके रहस्य चिंतन में ही अपनी शक्ति क्यों नहीं लगाते।"

गांधीजी ने सन 1934 में काका कालेलकर को दक्षिण में हिंदी का कार्य व्यवस्थित करने को भेजा। क्योंकि हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रचार का काम ठीक-ठाक नहीं कर पा रहा था। जाते समय गांधीजी ने काका कालेलकर से कहा था कि हिंदी प्रचार के लिए पैसे का प्रबंध भी वहीं से करें, ताकि हिंदी उनके जीवन में प्रवेश कर सके।

गांधीजी जीवन पर्यंत हिंदी भाषा अपनाने के लिए सभी को प्रेरित करते रहे और इसी संदर्भ में उन्होंने हिंदुस्तानी साहित्य सभा की भी स्थापना की, जो बाद में गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा के रूप में काका साहेब कालेलकर द्वारा निर्देशित होती रही।

राष्ट्र की एकता और अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए गांधीजी का एक राष्ट्रभाषा का सपना, जो केवल हिंदी ही हो सकती है, कब पूरा होगा!

सम्पर्कः

ए-249, सेक्टर-46, नोएडा-201303

मो. 9810911826

भाषा-विमर्श

अस्मिता का नवीन विमर्श:प्रवासी हिंदी साहित्य

डॉ शुभंकर मिश्र

वर्तमान चाहे लाख सुंदर हो, भविष्य की कल्पना चाहे लाख स्वर्णिम हो; पर अतीत की सपाट बयानी को हममें से भला कौन नजरंदाज कर सका है? वह तो जो है, सो बस है – तिक्त या मधुर, हम चाहकर भी उसमें कोई रीटेक यानी रद्दो-बदल नहीं कर सकते।

संयुक्त राष्ट्र की 'विश्व प्रवासन रिपोर्ट', 2022 के अनुसार, सन 2020 में दुनिया भर में सबसे बड़ी प्रवासी आबादी भारतीयों की थी। मैक्सिको, रूस और चीन का स्थान इसके बाद आता है। प्रेमचंद ने कहा है कि मनुष्य में मेल-मिलाप के जितने साधन हैं, उनमें सबसे मजबूत असर डालने वाला रिश्ता भाषा का होता है। भारतीय भाषाएँ विशेषकर हिंदी, भारत से बाहर रहने वाली इस उभरती भारतीय 'सॉफ्ट पावर' को परस्पर जोड़ने, संवाद करने और अपने बीच के सांस्कृतिक अंतराल को पाटने और उन्हें एक सूत्र में जोड़ने का माध्यम बनी।

विदित ही है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। आशय यह कि समाज में जो कुछ घट रहा है, वे सबके-सब, किसी भी जीवंत साहित्य सृजन के लिए पौष्टिक खुराक होते हैं,जो उन्हें परिवेशमूलक और समसामयिक बनाने में भरसक मदद करते हैं। इस क्रम में यहाँ यह उल्लेख प्रासंगिक हो जाता है कि सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं भौगोलिक भिन्नताओं के बावजूद मानव जाति की संस्कृति साझा होती है। इसमें कोई दो राय नहीं कि हमारे दु:ख-सुख, भाव-अभाव, भूख, गरीबी, असमानता, शोषण और संघर्ष और यहाँ तक कि प्रेम और स्नेह भी कमोबेश एक जैसे ही होते हैं। साझेपन की इस संस्कृति को जब मनुष्य अपनी रचना धर्मिता की कूची से 'केनवस' पर उकेरता है, तब वह सृजन 'विश्व साहित्य' कहलाता है। प्रकारांतर से, प्रवासी हिंदी लेखन, अपनी थाती और साझी संस्कृति को लेकर शुरू से ही सजग रहा है, जिससे वैश्विक विश्व हिंदी साहित्य का फलक बहुवर्णी, बहुआयामी और सर्वोपरि समग्र-संपूर्ण बन सका है। इस तरह के साहित्य संसार में आपको साझेपन का सरोकार और सत्व का तत्व आधिक्य के साथ दिखता है। मशहूर शायर निदा फाजली के शब्दों में इसे यहाँ कुछ यूँ बयाँ किया जा सकता है:

संयुक्त राष्ट्र की 'विश्व प्रवासन रिपोर्ट', 2022 के अनुसार, सन 2020 में दुनिया भर में सबसे बड़ी प्रवासी आबादी भारतीयों की थी। मैक्सिको, रूस और चीन का स्थान इसके बाद आता है। प्रेमचंद ने कहा है कि मनुष्य में मेल-मिलाप के जितने साधन हैं, उनमें सबसे मजबूत असर डालने वाला रिश्ता भाषा का होता है।

साँसें जितनी मौजें उतनी, सब की अपनी-अपनी गिनती
सदियों का इतिहास समुंदर, जितना तेरा उतना मेरा

मोटे तौर पर प्रवासी भारतीय संसार के दो फलक माने जा सकते हैं। पहला फलक उन गिरमिटिया प्रवासी मजदूरों और उनके द्वारा येन-केन-प्रकारेण, उस अर्जित संसार का है, जो परिस्थितिजन्य प्रतिकूलता के बावजूद कठोर श्रम की नींव पर खड़ी है। गिरमिटिया देशों के साहित्य में प्रायः दुर्धर्ष-संघर्ष की दारुण कहानी दर्ज है। यह दरअसल त्याग, आत्मबलिदान और समर्पण की गाथा कहती है। हिंदी साहित्य का यह फलक, एक ओर, जहाँ हमें उस शाश्वत मान्यता 'राम गति देहु सुमति' का पाठ पढ़ाती है, तो वहीं दूसरी ओर यह अपने कर्तव्य के उच्चावच्च मार्ग पर गीता के न दैन्यम न पलायनम - न बेचारगी दिखाएं और न कदापि रण क्षेत्र छोड़कर भागें - का अटल संदेश देती है। गिरमिटिया देशों में भारतीयों के आगमन की करुण कहानियों का जो वर्णन यहाँ के इतिहास के पन्नों में दर्ज है, इतनी लोमहर्षक है कि वे आम पाठकों के अंतर्मन को पूरी तरह से झकझोर कर रख देता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है:

जो दिख रहा है सामने, वो दृश्य मात्र है,
लिखी रखी है पटकथा, मनुष्य पात्र है,
विचारशील मुग्ध हैं, कथित प्रसिद्धि पर,
विचित्र है समय, विवेक शून्यमात्र है।

इन वाकयों को शब्दों में बयां करना गिरमिटिया देशों के भुक्तभोगियों और सर्जकों-लेखकों के लिए यकीनन कठिन रहा होगा। निराशा और अवसाद के इस परिदृश्य में हौसला रखने की बात यहाँ यह थी कि प्रवासी साहित्य-संसार का यह उपन्यस्त फलक,भावी पीढ़ियों को आशा का दामन हरगिज नहीं छोड़ने का संदेश देता है। रामचरितमानस, गंगाजल, तुलसी, हनुमान चालीसा और सत्यार्थ प्रकाश के आध्यात्मिक संबल पर अपनी संस्कृति, अस्मिता और अपने वजूद को बचाए रखने का उनका मानवीय संघर्ष, हम सबको यह स्पष्ट संदेश देता है कि मुश्किलें चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न हों, वह मानवीय जिजीविषा के सामने कदापि ठहर नहीं सकतीं। कविवर रामधारी सिंह दिनकर ने भी कहा है :

सच है विपत्ति जब आती है, कायर को ही दहलाती है,
शूरवान नहीं विचलित होते, क्षण एक नहीं धीरज खोते
काँटों में राह बनाते हैं, विघ्नों को गले लगाते हैं।

गिरमिटिया साहित्य में अभिव्यक्त इन भारतवंशियों की चेतना का दस्तावेजीकरण सपाट-बयानी से कहीं आगे मनोवैज्ञानिक और समाज-शास्त्रीय विश्लेषण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। यहाँ के इतिहास के विविध प्रसंगों में, उन गौरवशाली क्षणों को पुनर्जीवित और एक सिरे से व्याख्यायित करने का जो एक विशेष आग्रह रहा है, वह वस्तुतः उन भारतवंशियों की संतानों की महत्तम और महानतम उपलब्धियों का एक असाधारण वर्णन है। रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों के सात्विक संबल के साथ इन भारतीय वंशजों ने कठिन परिश्रम और जिजीविषा से अभिनव मॉरीशस के निर्माण की न केवल कालजयी भूमिका लिखी बल्कि बिना थके, रुके और हारे मानवीय प्रगति में निरंतर अध्याय-दर-अध्याय जोड़ते चले गए।

सदियों का इतिहास समुंदर, जितना तेरा उतना मेरा साँसें जितनी मौजें उतनी, सब की अपनी-अपनी गिनती मोटे तौर पर प्रवासी भारतीय संसार के दो फलक माने जा सकते हैं। पहला फलक उन गिरमिटिया प्रवासी मजदूरों और उनके द्वारा येन-केन-प्रकारेण, उस अर्जित संसार का है, जो परिस्थितिजन्य प्रतिकूलता के बावजूद कठोर श्रम की नींव पर खड़ी है। गिरमिटिया देशों के साहित्य में प्रायः दुर्धर्ष-संघर्ष की दारुण कहानी दर्ज हैं।

उल्लेखनीय है कि गिरमिटिया देशों में हिंदी लगभग एक सौ साठ वर्षों से अपनी स्थानीय पहचान के साथ भारतीय अस्मिता की बात करती रही है। मॉरीशस की हिंदी, फिजी की हिंदी-हिंदी बात, सूरीनाम और ब्रिटिश गुआना की सरनामी हिंदी, त्रिनिदाद की त्रिनी हिंदी और दक्षिण अफ्रीका-नेटाल की नेटाली हिंदी-इन सबमें आपको ठेठ भारतीय भाषाओं का ठाठ जरूर दिखेगा।

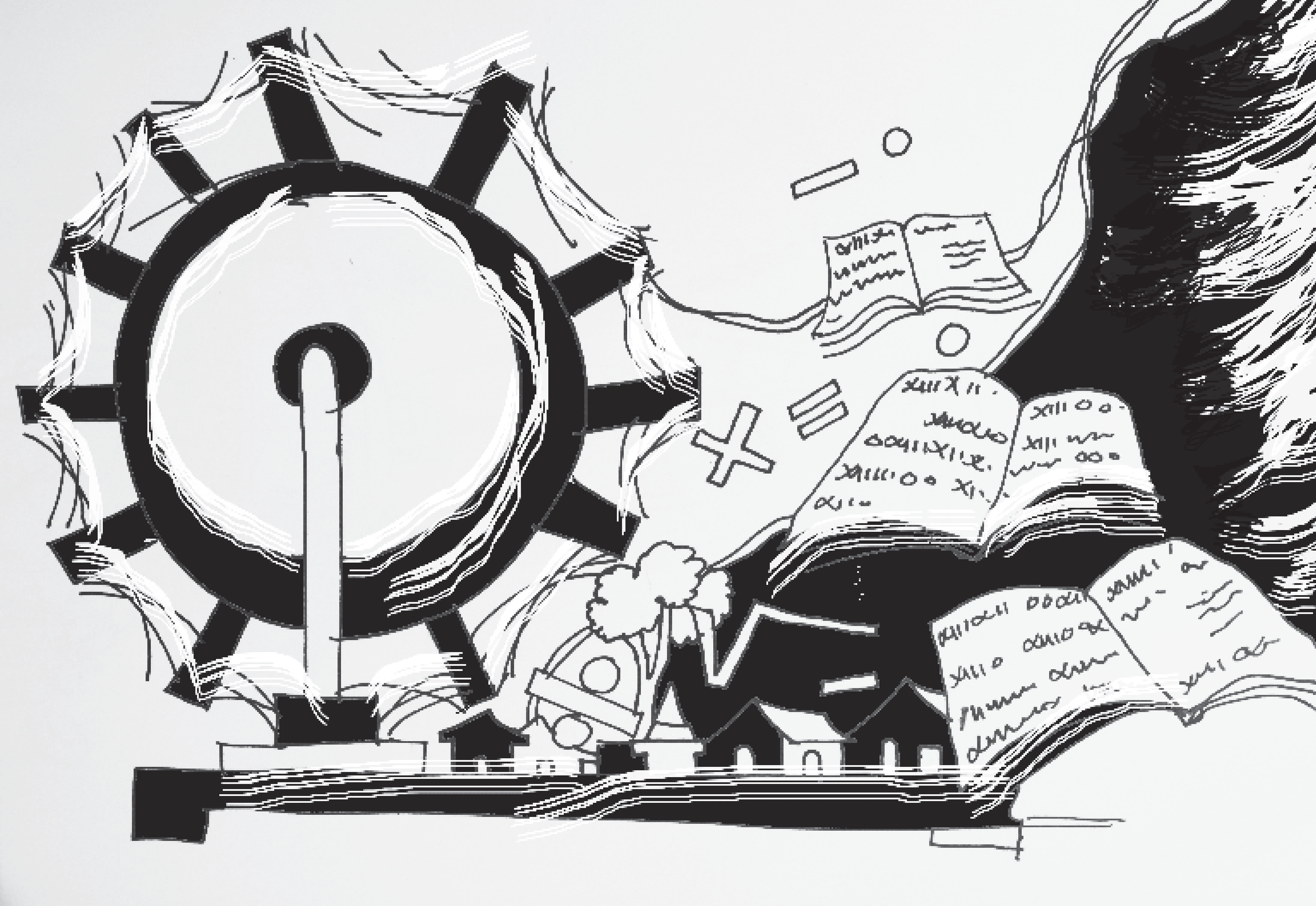

उदहारण के तौर पर मॉरीशस का प्रवासी साहित्य, समसामयिक सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य की पृष्ठभूमि में अभिव्यक्त होता रहा है। वह भोजपुरी के माध्यम से हिंदी भाषा और संस्कृति अपने ही तरह की एक खास जीवटता के साथ सहेजते रहा है –

‘श्रद्धेय पूर्वजों ने टापू में
हिंदी सम्पत्ति ला दी थी।
दारुण दुःख सह करके भी
उन्होंने हिंदी जोत जगाई थी।।

मॉरीशस में हिंदी साहित्य चिंतन की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। यहाँ के हिंदी-प्रेमियों ने अपनी जिजीविषा से हिंदी के प्रचार-प्रसार को नई ऊँचाइयों और बुलंदियों तक पहुँचाया। यहाँ के स्वतंत्रता-संग्राम का इतिहास इस बात को बड़ी बेबाकी से स्वीकार करता है कि उनके इस संग्राम में हिंदी का एक अहम योगदान रहा है। मॉरीशस में हिंदी के सृजन का आयाम उत्साहवर्धक है। इस धरती पर हिंदी भाषा एवं साहित्य की साधना में अनेकों साहित्यकार जैसे कि अभिमन्यु अनत, ब्रजेन्द्र कुमार, भगत ‘मधुकर’, बासुदेव विष्णु दयाल, सोमदत्त बखोरी, डॉ. लक्ष्मी प्रसाद रामयाद, डॉ. मुनीश्वर लाल चिंतामणि, कवि रामदेव धुरंधर आदि-आदि व्यक्तित्वों का असाधारण योगदान रहा है, जिनकी बुनियाद पर मॉरीशस का आरंभिक साहित्य निर्मित हुआ है। यहाँ के साहित्यकार विभिन्न ज्वलंत मुद्दों पर बड़ी बेबाकी से प्रश्न उठाते रहे हैं और उनका वैकल्पिक समाधान सरोकारी मुद्रा में ढूँढते रहे हैं।

लघु भारत ‘मॉरीशस’ के समान ही हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में फिजी का योगदान भी यहाँ विशेषतः उल्लेखनीय है। शर्तबंदी के तहत, भारत से हजारों की तादाद में यहाँ भी मजदूरों का आना हुआ था और फिर वे भी बस यहीं के होकर रह गए थे। भाषा, संस्कृति और अस्मिता का प्रश्न यहाँ के लिए भी तथैव महत्वपूर्ण था। ‘उठो, उठो हो फिजी वालों, अपनी आँखें खोलो, हिंदी अपनी भाषा है, हिंदी पढ़ो-लिखो और बोलो’ का उनका

आत्म-उद्बोधन, रामचरितमानस और कबीर की साखियों आदि की बुनियाद पर आज भी गुंजायमान है। फिजी के महत्त्वपूर्ण हिंदी लेखक पं. कमला प्रसाद मिश्र, विवेकानन्द शर्मा सरीखे अनेक कलमकारों ने हिंदी की श्रीवृद्धि में अपना उल्लेखनीय योगदान दिया है। लगभग कुछ इसी प्रकार से अन्य गिरमिटिया देशों, जैसे सूरीनाम, त्रिनिदाद, दक्षिण अफ्रीका और गुआना में रचे-बसे भारतवंशियों ने भी अदम्य साहस और कटिबद्धता के साथ भारतीय अस्मिता को आगे की पीढ़ियों तक पहुँचाने का अपना महत्त्वपूर्ण दायित्व पूरी निष्ठा के साथ निभाया।

गिरमिटिया साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में आपको अपने सांस्कृतिक जड़ों की तलाश, नई पहचान के लिए संघर्ष, भाषाई और सांस्कृतिक समन्वय का चित्रण, प्रवास और विस्थापन का दर्द, प्रवासी जीवन का संघर्ष आदि-आदि के भाव सहज दिखेंगे। इसी प्रकार आगे की गिरमिटिया पीढ़ी के लेखकों ने आधुनिक गिरमिटिया साहित्य में परिवार और समुदाय के बीच संबंधों के चित्रण और अन्य समसामयिक मुद्दों को नई दृष्टि के साथ सृजित और संरक्षित करने का बीड़ा उठाया। इसके माध्यम से हम यकीनन प्रवासी जीवन की गहराई और विविधता को उसके सही संदर्भों के साथ समझ सकते हैं।

प्रवासी भारतीय साहित्य की परिधि-विस्तार के क्रम में स्वेच्छा से गए, यहाँ उन भारतीयों का उल्लेख भी अपरिहार्य है, जो भौतिक-आर्थिक उन्नति के लिए अपनी माटी अपना देश छोड़कर जहाँ भी गए, बस वहीं के होकर रह गए। साहित्य इनके द्वारा भी प्रभूत मात्रा में रचा जा रहा है। इसके नेपथ्य में भौतिक चकाचौंध बेशक दिखती हो, पर इस चाकचिक्य के अतिरिक्त उसमें भी आपको भावनात्मक संवेदना और देश से बिछड़ने का दर्द जरूर दिखेगा।

भारत से बाहर संख्याबल से दुर्बल होने के दर्द ने भारतीयों को, बावजूद इसके की वे विभिन्न भाषा-भाषी और विभिन्न प्रांतों से हैं, हिंदुस्तानी या हिंदी के नाम पर एक-दूसरे से बखूबी जोड़े रखा। यदि देखा जाए तो यह हिंदी के प्रातिपदिकार्थ का एक सुखद विस्तार है, जो लोगों को भारत-भारतीयता, भाषा-संस्कृति के नाम पर एकजुट किए हुए है। इन प्रवासी भारतीयों के सृजन का संसार अपनी आगामी पीढ़ी को भारत की मुख्यधारा से जोड़ने और इस क्रम में उन्हें संस्कृति व संस्कार के सीखने-सिखाने की एक अकुलाहट के साथ है। प्रवासी हिंदी साहित्य का यह दूजा परिदृश्य भी बेहद उज्ज्वल है, जो हिंदी साहित्य को निरंतर सबलित और संवर्धित कर रहा है और इसे वैश्विक साहित्यिक परिदृश्य में प्रमुख स्थान दिला रहा है। मंजुल भगत, तेजेन्द्र शर्मा और पुष्पिता अवस्थी आदि-आदि प्रवासी भारतीय लेखकों ने अपने साहित्यिक योगदान से हिंदी साहित्य को न केवल समृद्ध और सिंचित किया है बल्कि प्रवासी भारतीय जीवन के विभिन्न पहलुओं को गहराई से जानने-समझने का अवसर भी प्रदान किया है। उनकी रचनाएँ सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यक्तिगत अनुभवों के स्याह-श्वेत पक्ष को मानवीय सरोकारों के साथ उजागर करती रही हैं। साहित्य के पाठकों को इनसे प्रवासी जीवन सौंदर्य और इनमें निहित जटिलताओं को बखूबी जानने-समझने में मदद मिलती रही हैं।

गिरमिटिया साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में आपको अपने सांस्कृतिक जड़ों की तलाश, नई पहचान के लिए संघर्ष, भाषाई और सांस्कृतिक समन्वय का चित्रण, प्रवास और विस्थापन का दर्द, प्रवासी जीवन का संघर्ष आदि-आदि के भाव सहज दिखेंगे। इसी प्रकार आगे की गिरमिटिया पीढ़ी के लेखकों ने आधुनिक गिरमिटिया साहित्य में परिवार और समुदाय के बीच संबंधों...।

हिंदी के लिए यहाँ यह सुखद है कि इन दोनों ही स्तरों पर साहित्य-सृजन और हिंदी पठन-पाठन की स्थिति दिनानुदिन बेहतर होती जा रही है और जो 'भाषा गई तो संस्कृति गई' के बुनियादी मनोविज्ञान पर आधारित है।

समकालीन प्रवासी हिंदी साहित्य में कई महत्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ दिखती हैं, जो प्रवासी जीवन के अनुभवों, संघर्षों और सांस्कृतिक विविधताओं को बखूबी उजागर करती हैं। यहाँ आपको प्रवासी जीवन की चुनौतियों, संघर्षों और अनुभवों का विस्तारपूर्वक वर्णन दिखेगा। यहाँ नॉस्टेल्जिया

और मातृभूमि का प्रेम है, सांस्कृतिक द्वंद्व और पहचान की खोज है और मातृभूमि और बचपन की यादों का प्रेमपूर्ण चित्रण भी, जो विदेश में रहने के दौरान अक्सर महसूस किया जाता है। प्रवासियों के सामाजिक और आर्थिक संघर्ष, नौकरी की असुरक्षा, भेदभाव, और आर्थिक विषमताएँ, प्रवासी स्त्रियों के अनुभव, उनके संघर्ष, और उनकी स्थिति का साहित्यिक चित्रण, नई भाषा और सांस्कृतिक संदर्भ में संवाद की समस्याएँ, द्विभाषिकता और बहुभाषिकता, विभिन्न पीढ़ियों-पहली, दूसरी, और तीसरी पीढ़ी के प्रवासियों के अनुभव और उनके बीच के अंतर के अनुभव, आधुनिक जीवन शैली, तकनीकी परिवर्तन, और प्रवासी जीवन में उनकी भूमिका इस साहित्य संसार के मुख्य कथ्य रहे हैं ।

विवेचना की समग्रता के क्रम में यहाँ भारत के बाहर उस भारतीयेतर वर्ग की चर्चा भी जरूरी हो जाती है, जो इतिहास जनित सहज कौतुहलता के कारण प्राच्य-विद्या और अतुल्य भारत को नजदीक से जानना-समझना चाहता है। इनमें रूस के बरानिन्कोव, चेलीशेव, प्रो. लिउडमिला खोख्लोवा, अनन्त सीथागूहिया, इटली की मारियो ला और तुर्बीयानी, बेल्जियम के फॉदर कामिल बुल्के, जापान के प्रो. तोमियो मिजोकामी, प्रो. अकीर ताकाशाही, प्रो. फुजिई, प्रो. दोई, फ्रांस के निकोलस बलबीर, ऑस्ट्रेलिया के प्रो. जार्ज, डेनमार्क के प्रो. थीसन, चेक के डॉ. ओदोनेल स्मेकल, अमेरिका के डॉ. करीम शोमर, पोलैण्ड के बृस्की, हालैण्ड के पेशोकर, जर्मनी के लोठार लुत्से, चीन के प्रो. ची श्योन, प्रो. चिलहान, बुल्गारिया में प्रो. एमिलबोएव, श्रीमती तान्या गोचेवा, डॉ. बाल्या मारीनोना, डॉ. मिलेना ब्रातोएवा, आदि के नामों का स्मरण यहाँ अपरिहार्य हो जाता है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि विदेशों में उदीयमान हिंदी पठन-पाठन की व्यवस्था के कतिपय महत्वपूर्ण कारणों में इनके ये प्रयास बेहद महत्वपूर्ण रहे हैं। इन प्रवासी लेखकों ने अपनी महनीय साहित्यिक कृतियों के माध्यम से न केवल अपने निजी और सामूहिक अनुभवों को साझा किया है, बल्कि हिंदी साहित्य को भी एक नया दृष्टिकोण और एक अर्थपूर्ण गहराई प्रदान की है।

उल्लेखनीय है कि महात्मा गांधी की 'माय एक्सपेरिमेंट विद ट्रुथ' प्रवासी लेखन में एक मील का पत्थर है, जिसका अनेक भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुआ है। इस दिशा में प्रवासी हिंदी साहित्य के प्रचार-प्रसार में अनुवाद ने आगे भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सांस्कृतिक पहचान की खोज और विभिन्न संस्कृतियों के बीच द्वंद्व के साथ-साथ ये प्रयास नई और पुरानी संस्कृति के बीच तालमेल बिठाने की कोशिशों के साथ आगे आए हैं। हिंदीतर भाषाओं में रचित इस प्रवासी साहित्य-संसार में झुम्पा लाहिड़ी के उपन्यास और कहानियाँ 'द नेमसेक', 'द इंटरप्रेटर ऑफ मेलिडीज', विक्रम सेठ का उपन्यास 'अ सूटेबल बॉय', 'एन इक्वल म्यूजिक', भारती मुखर्जी का उपन्यास 'जैस्मीन' 'द टाइगर ऑफ डॉटर', चित्रा बनर्जी दिवाकरुणी का उपन्यास 'द मिस्ट्रेस ऑफ स्पाइसेज', 'सिस्टर ऑफ माय हार्ट' आदि-आदि ने प्रवासी साहित्य को एक नई दिशा और दशा प्रदान की है ।

समेकित रूप से इन प्रवासी लेखकों ने साहित्यिक कृतियों के माध्यम से न केवल अपने व्यक्तिगत और सामूहिक अनुभवों को साझा किया, बल्कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति का आशातीत संवर्धन-परिवर्धन किया है। हिंदी साहित्य को इससे निस्संदेह एक नई दृष्टि और एक अभिनव क्षितिज मिला है। यह न केवल साहित्यिक दृष्टि से बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी बेहद महत्वपूर्ण है। प्रवासी लेखन ने भारतीय प्रवासियों के अनुभवों को वैश्विक मंच पर एक सलीके से तो प्रस्तुत किया ही है, साथ ही विभिन्न संस्कृतियों के बीच सेतु बनने-बनाने की दिशा में भी शलाघनीय प्रयत्न किया है। प्रवासी साहित्य संसार के इन महनीय कलमकारों को अभिनन्दन !

(लेखक भारत सरकार के एक अधिकारी हैं, जो विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस में उप महासचिव के रूप में देश का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।)

संपर्क:
मो. +91 9810583309

हिंदी भविष्य की भाषा!

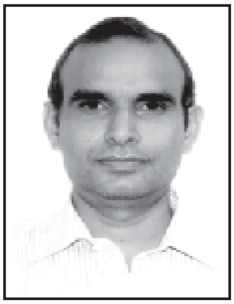

अखिलेश आर्येन्दु

बात कर रहा हूँ हिंदी और देवनागरी पर मंडराते संकट पर। तमाम लोग हिंदी में बेतहाशा अंग्रेजी शब्दों के साथ लिखने और बोलने को एक जरूरत मानते हैं तो ऐसे तमाम लोग हैं जो इसे भाषा के प्रति जनता और सरकार की संवेदनहीनता। मेरे विचार से यह भाषा और संस्कृति के प्रति संवेदनहीनता और स्वाभिमानहीनता है। गौरतलब है तमाम लोग इसे संकट नहीं मानते। ध्यान देने वाली बात यह है कि भारत के करोड़ों लोगों के जरिए बोली जाने वाली भाषा हिंदी जो धीरे–धीरे हिंग्रेजी के रूप में बदल रही है, आज मीडिया की मुँहबोली बन गई है। सबसे मजेदार बात यह है कि जिस नई भाषा को आम आदमी अपनी नई भाषा कहता है, वह देवनागरी लिपि और यूरोपीय लिपि दोनों को मिलाकर लिखी जाने लगी है। यानी मिलावट की नई भाषा बोली और लिखी तो जा ही रही है, वह भारतीय समाज की भविष्य की भाषा के रूप में भी स्वीकार होती जा रही है। और तर्क दिया जा रहा है भाषा जल की तरह होती है उसे बहते रहने देना चाहिए। लेकिन ऐसा तर्क करने वाले यह भूल जाते हैं कि बहते हुए जल के लिए भी तटबंध जरूरी है वरना ऐसा जल किसी काम नहीं आता। जाहिर तौर पर भाषा के मामले में भी यही बात है। नई मिलावट की भाषा उस जल की तरह है जिसकी अपनी पहचान और सिद्धांत नहीं है और न कोई व्याकरण यानी मर्यादा ही।

मिलावट किसी भी चीज में हो, वह कई स्तरों पर समस्या पैदा करती है। हिंदी और दूसरी भारतीय भाषाओं में हो रही अंग्रेजी शब्दों की अंधाधुंध मिलावट से भी ऐसी ही समस्याएँ पैदा हो रही हैं, जो समाज, संस्कृति, भाषा, भाव, अभिव्यक्ति और विषय को प्रभावित कर रही हैं। लेकिन बात इतनी ही नहीं है। मिलावट महज शब्दों की नहीं है, बल्कि लिपि की भी है। दो लिपियों को मिलाकर जिस नई भाषा को लिखने की कवायद की जा रही है, उनकी बनावट व स्वभाव और परिवेश दोनों एकदम अलग तरह के हैं। जिस तरह से दो नावों पर एक साथ यात्रा करने वाले व्यक्ति की जो दशा होती है, ऐसा ही दो लिपियों को लेकर लिखी जा रही हिंदी की भी हो रही

गौरतलब है तमाम लोग इसे संकट नहीं मानते। ध्यान देने वाली बात यह है कि भारत के करोड़ों लोगों के जरिए बोली जाने वाली भाषा हिंदी जो धीरे–धीरे हिंग्रेजी के रूप में बदल रही है, आज मीडिया की मुँहबोली बन गई है। सबसे मजेदार बात यह है कि जिस नई भाषा को आम आदमी अपनी नई भाषा कहता है, वह देवनागरी लिपि और यूरोपीय लिपि दोनों को मिलाकर...।

है। भारत में हिंदी के अलावा कोई और भाषा दो लिपियों में नहीं लिखी जाती है। दो लिपियों में लिखी जा रही इस तथाकथित भाषा का व्याकरण कैसे निर्धारित होगा, इसका समाधान अभी तक नहीं किया जा सका है। इस पर उन सभी लोगों को क्या विचार नहीं करना चाहिए जो हिंग्रेजी के झंडाबरदार हैं? विचारणीय बात यह भी है कि अखबार या चैनल इस विसंगति के प्रति आँखे मूंदे हुए हैं जो बहुत चिंता की बात है। भाषा वैज्ञानिकों का मानना है, बिना मिलावट वाली वस्तु जैसे सबसे अच्छी होती है, उसी तरह भाषा और लिपि भी होती है। और लिपि के मामले में देवनागरी लिपि जिस तरह से वैज्ञानिक, व्याकरणिक और सरल है उसी तरह हिंदी भी वैज्ञानिक और सरल है। लेकिन हिंग्रेजी के बारे में किस तरह का मानक होगा, होगा भी कि नहीं, इस सवाल का जवाब किसी के पास नहीं है। भारतीय समाज में भाषा के प्रति संवेदनशीलता न के बराबर है। यही कारण है कि तमिलनाडु या कर्नाटक को छोड़कर भाषा को बचाने वाला कोई आंदोलन नहीं हुआ। हिंदी को बचाने का आंदोलन आजादी के पहले दशक में गैर हिंदी भाषा भाषी प्रदेशों में भले हुआ हो, लेकिन हिंदी प्रदेशों में नहीं हुआ। यही कारण है हिंदी में मिलावट मनमाने तरीके से होती गई। वह चाहे हिंदी के सरलीकरण के नाम पर हुआ हो या शब्द-भण्डार बढ़ाने के नाम पर।

हिंदी पढ़कर देश सेवा करने वाले हिंदी सेवियों की वैसी कद्र नहीं है जैसी अंग्रेजी पढ़कर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में कार्य करने वाले। मेरा अनुभव है, हिंग्रेजी या हिंग्लिश के पुजारी आज के बाजार के मुताबिक अपने कार्य में फिट बैठते हैं। और वे ही समाज में प्रतिष्ठा हासिल करने के अधिकारी होते हैं। लेकिन देवनागरी और शुद्ध हिंदी का प्रयोग करने वालों को पिछड़ा हुआ और कमजोर समझा जाता है। सोशल मीडिया, इलेक्ट्रोनिक्स प्रचार-प्रसार के माध्यमों और अधिकांश हिंदी अखबारों की भाषा हिंग्लिश हो गई है। लेकिन माना इन्हें हिंदी का जाता है। दिल्ली के एक नामी अखबार की भाषा पिछले 30 सालों से पूरी तरह हिंग्रेजी बन गई है। देवनागरी और यूरोपीय लिपि में लिखे वाक्य अजीब होते हुए भी लोगों के जरिए पसंद किए जा रहे हैं। इसके बावजूद कि अखबार की जो बनावट और सजावट है, वह पहले जैसे नहीं रह गई है। दिल्ली से छपने वाले कुछ अखबारों में ही सहज-सरल हिंदी का इस्तेमाल किया जाता है लेकिन इन अखबारों की प्रसार संख्या हिंग्लिश में निकलने वाले अखबारों की प्रसार संख्या से बहुत कम है।

हिंदी का संकट लगातार बढ़ रहा है। और वह संकट है देवनागरी लिपि के साथ यूरोपीय लिपि का हिंदी अखबारों में बढ़ता चलन। हिंगरेजीकरण हिंदी का केवल भाषा के स्तर पर ही नहीं हो रहा है, बल्कि लिपि के स्तर पर भी बहुत तेजी के साथ हो रहा है। हिंदी में अंग्रेजी की मिलावट में बढ़ता यह चलन बहुत गंभीर है। यह भाषाई मिलावट दस-बीस सालों से नहीं हो रही है, बल्कि आजादी मिलने के बाद ही हिंदी वाले ही बोलते वक्त अंग्रेजी शब्दों का इस्तेमाल गाहे-बगाहे करने लगे थे। फिल्म, दूरदर्शन, रेडियो, अखबार में कहीं-कहीं अंग्रेजी शब्दों का इस्तेमाल होने लगा था। लेकिन यह छिटपुट ही था। हिंदी फिल्मों ने हिंदी को सरल रूप दिया, लेकिन यह सरलीकरण अंग्रेजी को लेकर हुआ। इसका परिणाम यह हुआ, हिंदी का रूप-रंग, संस्कृति, शैली और वैज्ञानिक स्वरूप बदलने लगा। मुल्क की आजादी का पहला दशक और आज सातवें दशक में हिंदी बदलते-बदलते हिंग्रेजी या हिंग्लिश के रूप में आ गई है। आज की हिंदी भले ही समृद्ध दिखती है, लेकिन उसके स्वरूप और संस्कृति का वह रूप पहले जैसा नहीं रह गया है। जिस विकृत स्वरूप में हिंदी आज है, वह हिंदी तो नहीं कही जा सकती।

समृद्ध भाषा धीरे-धीरे किसी अवैज्ञानिक भाषा के असर से विकृत होती है, इसका दुनिया में यदि कोई उदाहरण हमारे सामने है तो हिंदी का है। अच्छी हिंदी की घटती संख्या, लोकप्रियता, प्रचार और बाजारीकरण को लेकर हिंदी के झंडाबरदार ही संवेदित नहीं हैं। हिंदी इलाके का आम आदमी अब अपनी आंचलिक बोली-भाषा में बोलने के बजाय हिंग्रेजी में बोलना गौरव महसूस करता है। आज की पीढ़ी को अच्छी व शुद्ध हिंदी सिखायी ही नहीं जा रही है तो शुद्ध हिंदी वह बोले कैसे? उसकी

पढ़ाई-लिखाई, मनोरंजन की भाषा, राजनीति की भाषा और ज्ञान-विज्ञान की भाषा अंग्रेजी या हिंग्रेजी है। गांव-गिरांव का अनपढ़ आदमी जो बीस साल पहले औरत-मर्द बोला करता था वह आज लेडिज-जैन्ट्स बोलता है। याचिका को पिटेशन, कचहरी को कोर्ट, फिटफिटिया को मोटर साईकिल या बाईक, माट साहब या मुंशीजी को टीचरजी, पत्नी को वाईफ, लड़की को गर्ल्स, भाषा को लैंगवेज, रसोई को किचन, सड़क को रोड़, पानी को वाटर, दूध को मिल्क, ईतवार को संडे, बाजार को मार्केट और शादी को मैरेज जैसे अंग्रेजी शब्दों का इस्तेमाल आमतौर पर करने लगा है। यानी हिंदी या अवधी-भोजपुरी, ब्रज, छत्तीसगढ़ी बोलने वाला व्यक्ति भी अपनी भाषा-बोली से कटकर हिंग्रेजीकरण का शिकार हो रहा है। आंचलिक बोलियों की मिठास से बेखबर आज की पीढ़ी अपनी भाषा-बोली के साथ अपनी गौरवशाली संस्कृति से भी दूर होती जा रही है। मोबाइल ने इस दूरी को और भी बढ़ा दिया है।

तीन दशक पहले हिंदी क्षेत्र का व्यक्ति अपनी आंचलिक भाषा-बोली का इस्तेमाल स्वाभिमान के साथ जब करता था तब वह अपनी माटी और थाती को संजोए हुए था, लेकिन आधुनिकता और विकास के नाम पर वह उसी रास्ते पर आगे बढ़ रहा है जिस रास्ते पर शहरी हिंदी क्षेत्र का पढ़ा-लिखा व्यक्ति। अंग्रेजी या हिंग्लिश ने गाँव की रसोई, हाट-बाजार, चौपाल और आंगन तक पांव पसार लिए हैं। गाँवों में कुकुरमुत्ते की तरह खुले अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों की हालात यह है कि उन्हें न ठीक से हिंदी की जानकारी है और न तो अंग्रेजी की ही। देवनागरी लिपि के अंकों की जानकारी तो है ही नहीं।

हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का यह संकट लगातार बढ़ रहा है। लेकिन हम हिंदी वाले इस संकट को महसूस ही नहीं करते। ऐसे में हिंदी के मौलिक स्वरूप की हिफाजत कौन करेगा, एक बड़ा प्रश्न है।

बाजारों में लगे नाम-पट्ट, घरों पर लगे नाम-पट्ट, सड़कों पर गड़े किलोमीटर के पत्थर पर लिखे किलोमीटर, सड़क किनारे पेड़ों पर लिखे पेड़ों के नाम, वाहन संख्या और शादी कार्ड शहरों-कस्बों में ही नहीं, बल्कि गाँवों में अंग्रेजी या हिंग्रेजी में लिखे जाने लगे हैं। हिंदी क्षेत्र के बड़े शहरों, कस्बों और नगरों से निकलने वाले छोटे-बड़े अखबारों की भाषा हिंग्रेजी हो गई है। सरलीकरण के नाम पर हिंदी की आत्मा सूखती जा रही है। लेकिन इसकी तरफ किसी का ध्यान नहीं है। जब हिंदी की यह दुर्दशा है तो हिंदी की आंचलिक भाषा-बोलियों की क्या दशा हो रही है, समझा जा सकता है।

हिंदी फिल्मों, अखबारों, टीवी चैनलों और दूसरे सूचना के माध्यमों में आज हिंग्रेजीकरण की होड़ लगी हुई है। जिसका असर सीधे आम आदमी पर दिखाई दे रहा है। इसे नए जमाने की भाषा कहा जा रहा है। इस भाषाई मिलावट को समाज ने हर क्षेत्र में स्वीकार किया है। अब सवाल उठता है क्या हिंदी के हिंग्रेजीकरण को वक्त के साथ स्वीकार करना चाहिए या हिंदी को बचाने के लिए आंदोलन चलाना चाहिए? लेकिन भाषाई संवेदनहीनता के समय में हिंदी को बचाने के लिए कौन आगे आएगा?

हिंदी के मेरे दोस्त जो हिंदी के हिंग्रेजीकरण पर बहुत चिंतित रहते हैं और हिंदी को बचाने में लगे हुए हैं, हिंदी की इस हालात के लिए हिंदी क्षेत्र के प्रत्येक व्यक्ति को जिम्मेदार मानते हैं। उनका कहना है, सूचना के सभी माध्यम आम आदमी के लिए हैं। आम आदमी की जिम्मेदारी जैसे समाज में बढ़ती अराजकता को रोकने के लिए है। जैसे कोई घटना घटने पर उसे आँख-कान खोले रखने के लिए चौकन्ना रखना होता है उसी तरह अपनी भाषाई थाती को संजाए रखने के लिए जागरूकता रखनी चाहिए। क्योंकि यह हमारे उन पुरखों की थाती है जिन्होंने स्व-भाषा के लिए अपनी जिन्दगी होम कर ली। हमारा फर्ज बनता है हम उसे संजोए रखें। कहने का मतलब, हिंदी को बचाने की जिम्मेदारी जितनी हिंदी सेवकों की है, हिंदी अखबारों, हिंदी चैनलों, रेडियो. फिल्मों और सोशल मीडिया की है उतनी ही आम आदमी की है। यानी हिंदी को हम बचाएंगे, तभी बचेगी।

(लेखक साहित्यकार और चिंतक हैं)

संपर्कः

मो. 8178710334

भाषा-विमर्श

गांधीजी का हिंदी प्रेम

संजीत कुमार

एक प्रचलित वाक्य है साहित्य समाज का दर्पण होता है। प्रत्येक देश का साहित्य उस देश की जनता की चित्तवृतियों का सिंचित प्रतिबिंब होता है। जनमानस की भावनाओं और तत्कालीन सामाजिक ताने बाने को शब्दों के माध्यम से साहित्य अपना बनाता है, जो सदियों तक अतीत के झरोखे के रूप में याद किया जाता है, एवं संजोया जाता है। हिंदी भाषा और साहित्य भी हिंदुस्तान में सदियों से सामान्य मानवी की लोकप्रिय भाषा रही है जिसने लोगों को एकता के सूत्र में पिरोकर समाज में गतिशीलता लाकर बदलाव का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनी है।

देश के स्वतंत्रता आंदोलन को नई दिशा प्रदान कर उसे जीवंत बनाने एवं राष्ट्रीय चेतना के संचार में हिंदी भाषा की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। सांस्कृतिक मूल्यों एवं विरासत के गौरव गान में हिंदी की भूमिका ने आजादी की लड़ाई को सशक्त बनाकर अंग्रेजी हुकूमत को खदेड़ने में भी बखूबी योगदान दिया है। दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने के बाद इंदौर के हिंदी साहित्य सम्मेलन में 1918 में गांधीजी कहते हैं –

"जैसे ब्रिटिश अंग्रेजी में बोलते हैं और सारे कामों में अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं वैसे ही सभी से प्रार्थना करता हूँ कि हिंदी को राष्ट्रीय भाषा का सम्मान अदा करें। उसे राष्ट्रीय भाषा बनाकर हमें अपने कर्त्तव्यों को निभाना चाहिए।"

महात्मा गांधी के द्वारा अपने सबसे छोटे पुत्र देवदास गांधी को हिंदी दूत के रूप में तमिलनाडु भेजना भी इस बात को बल देता है कि इस भाषा में उन्हें लोगों को आपस में जोड़नेवाला प्रभावी गुण दिखा जो कि आजादी के लिए तत्कालीन परिवेश में जरूरी था। हिंदी भाषा को जनता की आवाज एवं अपनी विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर गांधीजी ने इसे राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया।

राष्ट्रभाषा के क्या लक्षण होने चाहिए इस पर उन्होंने कहा है –

- वह भाषा सरकारी कर्मचारियों के लिए सरल हो।
- उस भाषा के द्वारा भारत का धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक काम-काज संपन्न होना चाहिए।
- उस भाषा को भारत के अधिकांश लोग बोलते हों।
- यह भाषा राष्ट्र के लिए आसान होनी चाहिए।
- यह भाषा किसी क्षणिक या अस्थायी स्थिति पर निर्भर न हो।

गांधीजी कहते हैं इन सभी कसौटियों पर हिंदी भाषा सही उतरती है इसलिए हिंदी को राष्ट्रभाषा का गौरव मिलना चाहिए। यदि हिंदी राष्ट्रीय भाषा होगी तो साहित्य का विस्तार भी राष्ट्रीय होगा। जैसे भाषक वैसी भाषा। मुझे खेद तो यह है कि जिन प्रांतों की मातृभाषा हिंदी है, वहाँ भी उस भाषा की उन्नति के लिए उत्साह नहीं दिखाई देता है। उन प्रांतों में हमारे शिक्षित वर्ग आपस में पत्र व्यवहार बात-चीत अंग्रेजी में करते हैं।

"राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है" यह गांधीजी का ही विचार था। राष्ट्र की उन्नति राष्ट्रभाषा के बिना संभव नहीं है। एक ही साथ भिन्न-भिन्न भाषी प्रदेशों की जनता के साथ संपर्क करने की एकमात्र क्षमता हिंदी में ही थी। इन्हीं बातों को देखते हुए राष्ट्रीय भावना जागृत करने के लिए हिंदी में व्याख्यान देकर लोगों से हिंदी में बात कर

हिंदी के प्रचार-प्रसार में उन्होंने उल्लेखनीय भूमिका निभाई। दक्षिण भारत में भी हिंदी भाषा के प्रचार के लिए गांधीजी ने बखूबी प्रयास किया एवं दक्षिण भारत हिंदी प्रचार संस्था के आजीवन अध्यक्ष रहें।

भारतीय जनता भी स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान यह चाहती थी कि हमारा जब राष्ट्र स्वतंत्र हो तो खुद का अपना शासन हो, भाषा भी ऐसी हो जो सबको एक साथ जोड़कर रखे। यही कारण है कि कई अहिन्दी भाषियों ने भी हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने में सब कुछ झोंक दिया। सुभाषचंद्र बोस के आजाद हिंद फौज की राष्ट्रभाषा हिंदी ही थी। बंकिमचंद्र चटर्जी से लेकर ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने भी हिंदी का समर्थन किया। बंगाल के चिंतक केशवचंद्र सेन ने भी सुलभ समाचार पत्र में लिखा था अगर हिंदी को भारतवर्ष की एकमात्र भाषा स्वीकार कर लिया जाए तो सहज में ही यह एकता संपन्न हो सकती है। अर्थात हिंदी भाषा ही खंडित भारत को अखंडित बना सकती है।

हिंदी के सवाल को गांधीजी केवल भावनात्मक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं मानते थे बल्कि उसे एक राष्ट्रीय आवश्यकता के रूप में देखते थे। 1921 में 'यंग इंडिया' में उन्होंने लिखा कि हिंदी के भावनात्मक अथवा राष्ट्रीय महत्व की बात छोड़ दें तो भी यह दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक आवश्यक मालूम होता जा रहा है। तमाम राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं को हिंदी सीख लेनी चाहिए और राष्ट्र की तमाम कार्यवाही हिंदी में ही की जानी चाहिए। असहयोग आंदोलन के दौरान गांधीजी ने पूरे देश में हिंदी को राष्ट्रीय एकता, अखंडता और स्वाभिमान का पर्याय बना दिया। आजादी के बाद का एक दिलचस्प वाक्या है। स्वतंत्रता मिलने के बाद देश-विदेश के पत्रकार भारतीय नेताओं के वक्तव्य, संदेश आदि के लिए आ रहे थे। ऐसे में एक विदेशी पत्रकार महात्मा गांधी से अपना संदेश अंग्रेजी में देने की जिद कर रहा था परंतु गांधीजी इसके लिए सहमत नहीं थे पर पत्रकार का कहना था कि संदेश भारतीयों के लिए नहीं बल्कि पूरी दुनिया के लिए है इसलिए वह अंग्रेजी में ही बात करें। थोड़ी देर शांत रहने के बाद गांधीजी ने पत्रकार को दो टूक उत्तर देते हुए कहा कि दुनिया को कह दो कि गांधी अंग्रेजी नहीं जानता। हिंदी भाषा के प्रति गांधीजी की ऐसी प्रतिबद्धता ने कई साहित्यकारों को भी प्रेरित किया जिन्होंने क्षेत्रीय, जनपदीय भाषा भूलकर राष्ट्रभाषा के रूप मे हिंदी के विकास पर अपनी कलम चलाई। मुंशी प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानदंन पंत, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा आदि ने हिंदी को समृद्ध किया वहीं नागार्जुन, रामवृक्ष बेनीपुरी, शिवपूजन सहाय, फणीश्वरनाथ रेणु आदि साहित्यकारों ने क्षेत्रीय बोलियों के मोह से ऊपर उठकर हिंदी के विकास में अच्छा योगदान दिया।

हिंदी का अहसान है कि देश के स्वतंत्रता संग्राम में लोगों के बीच देशभक्ति, राष्ट्रीय चेतना, स्वाभिमान और एकता बढ़ाने में इस भाषा ने अप्रतिम योगदान दिया और आजादी के बाद इसी को देखते हुए संविधान सभा ने 14 सितंबर 1949 को इसे राजभाषा का दर्जा दिया।

आजादी के बाद की हिंदी और वर्तमान स्थिति

14 सितंबर को देश में हिंदी दिवस मनाया जाता है चूँकि इसी दिन 1949 में इसे राजभाषा का दर्जा मिला था। अंग्रेजी, स्पेनिश, और मंदारिन के बाद हिंदी दुनिया में सबसे ज्यादा बोली जानेवाली भाषा है। देश के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने भी इस दिन की महत्ता को देखते हुए 14 सितंबर को हिंदी दिवस मनाने को कहा था और देश में पहला हिंदी दिवस 14 सितंबर 1953 में मनाया गया एवं तब से लेकर आज तक हम इसे मना रहे हैं।

संविधान के भाग 17 में अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा के रूप में हिंदी की स्थिति को बताया गया है परंतु अंग्रेजी के वर्चस्व के कारण हिंदी भाषा उपेक्षित हो रही है। अंग्रेजी जहां प्रतिष्ठा, सत्ता, नौकरी ओर संभ्रांत होने का सूचक है वहीं हिंदी उस स्तर पर अपना मुकाम स्थापित नहीं कर पाई है। स्कूली शिक्षा में जहाँ अंग्रेजी का ही बोलबाला है वहीं प्रतियोगिता परीक्षाओं में भी अंग्रेजी माध्यम वालों का वर्चस्व है। न्यायिक व्यवस्था में अभी भी आजादी के कई दशक बाद भी उच्च न्यायालय और सर्वोच्य न्यायालय की भाषा अंग्रेजी ही है। ऐसे में अंतिम जन तक न्याय पहुँचाने की परिकल्पना कैसे साकार होगा?

सिर्फ हिंदी दिवस मनाकर इसे प्रतीकात्मक ना बनाएँ बल्कि हिंदी भाषा को मन कर्म और वचन से अपनाएं और हिंदुस्तान के सांस्कृतिक गौरव और सामाजिक सौहार्द की भाषा के प्रति अपनी भागीदारी दिखाएँ तभी पूज्य बापू के हिंदी भाषा के उत्थान हेतु किए गए प्रयास के प्रति हम सबका सच्चा सम्मान होगा।

(लेखक गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के प्रशासनिक अधिकारी हैं)

साहित्य के गांधी

डॉ लहरी राम मीणा

"मैं यह भी निवेदन करना चाहूँगा कि अन्तःकरण की आवाज की प्रेरणा का दावा करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को वह प्रेरणा नहीं होती। हर क्षमता की तरह अन्तर्वाणी को सुनने की क्षमता भी पूर्व प्रयास और प्रशिक्षण से विकसित होती है। किसी अन्य समता के विकास के लिए जितना प्रयास और प्रशिक्षण अपेक्षित है, उससे कहीं ज्यादा अन्तःकरण की आवाज को सुनने की क्षमता विकसित करने के लिए आत्मप्रशिक्षण चाहिए।" डी. जी. तेन्दुलकर ('महात्मा : लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी', III, पृ. 3)

2 अक्टूबर, 1869 ई. को पोरबन्दर के सुदामापुरी में जन्में महात्मा गांधी के चिन्तन और दर्शन को भारत में ही नहीं, अपितु पूरे विश्व में याद किया जा रहा है। आज भी गांधी मरे नहीं बल्कि जीवित हैं, क्योंकि 21वीं सदी में हिंसा, बम और अशान्ति का एकमात्र समाधान कोई है तो गांधी ही हैं। इनके अलावा अन्य कोई विकल्प दिखाई नहीं देता। यह गांधी की ही 150वीं जयन्ती नहीं बल्कि 'बा' या 'कस्तूरबा' का भी 150वीं जयन्ती वर्ष है। गांधी एक युग पुरुष थे। उन्हें अहिंसा, सत्याग्रह एवं शांति का अग्रदूत कहा जाता है।

गांधी के प्रारम्भिक जीवन पर अगर दृष्टि डालें तो देखने में आता है कि उनका जीवन कठिन संघर्षों का तो था ही, साथ ही उनके जीवन को प्रभावित करने वाली घटनाओं में कुछ ही घटनाएँ महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं जिनको पढ़कर पूरी तरह प्रभावित होते हैं। जिनमें एक पुस्तक उनके पिता द्वारा ख़रीदी गयी जिसका नाम था 'श्रवण-पितृभक्त नाटक'। वह कहते हैं कि "इस नाटक को पढ़ने-देखने के बाद मन में मेरी भी इच्छा उत्पन्न हुई कि मुझे भी श्रवण के समान बनना चाहिए।" ('सत्य के प्रयोग' : संक्षिप्त आत्मकथा, राजपाल एंड संस, पृ. 16) दूसरी घटना उनके जीवन में जो घटी, वह भी नाटक को देखने के बाद ही घटी।

गांधीजी अपनी आत्मकथा में स्वयं कहते हैं कि, "उन दिनों जब नाटक कम्पनियाँ नाटक करने आया करती थीं तब मुझे भी नाटक देखने की इजाजत मिली और वह नाटक था 'हरिश्चन्द्र का आख्यान'।" वह कहते हैं कि, "उस नाटक को देखते हुए मैं थकता न था। उसे बार-बार देखने की इच्छा होती थी। मुझे हरिश्चन्द्र के सपने आते थे। हरिश्चन्द्र की तरह सत्यवादी सब क्यों नहीं होते? यह धुन बनी रहती। यह प्रश्न मैं दिन-रात अपने आपसे पूछता ही रहता था। सत्य का पालन करते रहना-यह मेरा

2 अक्टूबर, 1869 ई. को पोरबन्दर के सुदामापुरी में जन्में महात्मा गांधी के चिन्तन और दर्शन को भारत में ही नहीं, अपितु पूरे विश्व मे याद किया जा रहा है। आज भी गांधी मरे नहीं बल्कि जीवित हैं, क्योंकि 21वीं सदी में हिंसा, बम और अशान्ति का एकमात्र समाधान कोई है तो गांधी ही हैं। इनके अलावा अन्य कोई विकल्प दिखाई नहीं देता। यह गांधी की ही 150वीं जयन्ती नहीं बल्कि 'बा' या 'कस्तूरबा' का भी 150वीं जयन्ती वर्ष है।

आदर्श बना। हरिश्चन्द्र की घटना सही होगी, ऐसा मैंने मान लिया। हरिश्चन्द्र पर जैसी विपत्तियाँ पड़ीं, वैसी विपत्तियों को भोगना और सत्य का पालन करना ही वास्तविक सत्य है। मैंने यह मान लिया था कि उनका स्मरण करके मैं खूब रोया हूँ। आज मेरी बुद्धि समझती है कि हरिश्चन्द्र कोई ऐतिहासिक शक्ति नहीं थी। फिर भी मेरे विचार में हरिश्चन्द्र और श्रवण आज भी जीवित हैं। मैं मानता हूँ कि आज भी उनके नाटकों को पढ़ूं, तो मेरी आँखों से आँसू बह निकलेंगे।" (वही, पृ. 16) दूसरा यह कि गांधीजी पर जिन पश्चिमी विचारकों का प्रभाव माना जाता है, उनमें अंग्रेज विचारक थोरो, टॉलस्टॉय और जॉन रस्किन (1819-1900 ई.) हैं। गांधीजी भोजन करने के लिए प्रतिदिन निरामिष भोजनगृह जाया करते थे। वह स्वयं कहते हैं कि वहाँ मुझे अल्बर्ट वेस्ट और हेनरी पोलाक से निरामिषाहारी भोजनगृह (दक्षिण अफ्रीका) में मुलाकात हो गयी और हेनरी पोलाक से मित्रता हो गयी। हेनरी पोलाक ने मुझे जॉन रस्किन की पुस्तक 'अनटु दिस लास्ट' मेरे हाथ में पढ़ने के लिए रख दी और फिर इस पुस्तक को मैं छोड़ न सका। मैंने डरबन यात्रा के दौरान (जोहांसबर्ग से नेटाल का रास्ता लगभग 24 घण्टों का था) यह पुस्तक बिना सोये पूरी पढ़ डाली और फिर इस पुस्तक में सूचित विचारों को अमल में लाने का इरादा मैंने कर लिया। बाद में जाकर इन्होंने रस्किन की इस पुस्तक का अनुवाद गुजराती में 'सर्वोदय' शीर्षक से किया। इस पुस्तक के बारे में स्वयं गांधीजी कहते हैं कि, "मेरा यह विश्वास है कि जो चीज मेरे अन्दर गहराई में छिपी पड़ी थी, रस्किन के ग्रन्थ-रत्न में मैंने उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब देखा और इस कारण उसने मुझ पर अपना साम्राज्य जमाया और मुझसे उसमें दिये गये विचारों पर अमल करवाया। जो मनुष्य हममें सोयी हुई उत्तम भावनाओं को जाग्रत करने की शक्ति रखता है, वह कवि है। सब कवियों का सब लोगों पर समान प्रभाव नहीं पड़ता; क्योंकि सबके अन्दर सारी सद्भावनाएँ समान मात्रा में नहीं होतीं।" (वही, पृ. 105) आगे महात्मा गांधी पुनः कहते हैं कि इस पुस्तक से मुझे तीन सूत्र मिले-

1. सबकी भलाई में हमारी भलाई निहित है।

2. वकील और नाई दोनों के काम की क़ीमत एक-सी होनी चाहिए; क्योंकि आजीविका का अधिकार सबको एक समान है।

3. सादा मेहनत-मजदूरी का, किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है। (वही, पृ. 105)

1904 में फिनिक्स आश्रम (डरबन) की स्थापना का श्रेय भी जॉन रस्किन के विचारों में देखा जा सकता है और ट्रस्ट्रीशिप के सिद्धान्त पर भी रस्किन के विचारों का प्रभाव देखने को मिलता है।

जॉन रस्किन के बारे में मूलतः कहा जाता है कि वह कोई सामाजिक और राजनीतिक विचारक नहीं थे, बल्कि उनकी ज्यादातर रुचि कला और कविता में थी। वह कला का मूल प्रयोजन आध्यात्मिकता में देखते हैं। वह अपनी पुस्तक 'दि सेवन लैटर्स ऑफ आर्किटेक्चर' में स्वयं प्रतिपादित करते हैं कि "महान कला सत्य, त्याग आदि धार्मिक-नैतिक सिद्धान्तों की अभिव्यंजना है।" ('अहिंसा-विश्वकोश', नन्दकिशोर आचार्य, पृ. 565) आगे चलकर आलोचक, चिन्तक, नाटककार नन्दकिशोर आचार्य कहते हैं कि स्वयं रस्किन ने लिखा था कि यदि हम एक सच्चे मानव-जीवन की कल्पना कर सकें और एक ईमानदार तथा सादा जीवन के लिए प्रतिबद्ध हों तो सारी सम्पदा सर्वजन सम्पदा (Commen Welth) हो जाती है तथा हमारी सारी कला, साहित्य, हमारा दैनिक श्रम, पारिवारिक स्नेह और नागरिक कर्तव्य सब मिलकर एक शानदार, समरस जीवन की रचना कर सकते हैं।" (वही, पृ. 567)

गांधीजी स्वयं गुजराती हिन्दू थे। फिर भी उनके घर में 'रामचरितमानस' का पाठ सदा नित्य हुआ करता था। गुजराती उनकी मातृभाषा थी। इसके अलावा भी उन्होंने हिंदी और अंग्रेजी की जानकारी प्राप्त की। आगे चलकर भारत की उच्चशिक्षा के पाठ्यक्रम में मातृभाषा के अलावा हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, अरबी और फारसी की वकालत करते थे। हिंदी के दो रचनाकार ऐसे हैं, जो गांधीजी के प्रिय माने जाते थे, जिनमें था एक काका कालेलकर और दूसरे थे 'विशाल भारत' के सम्पादक बनारसीदास चतुर्वेदी। यही दो लेखक ऐसे थे जिनके माध्यम से गांधीजी हिंदी को देख समझ रहे थे।

गांधीजी 'बा' (कस्तूरबा गांधी) को ही अपना गुरु मानते थे। उसकी मृत्यु के बाद गांधी के जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव रायचन्द्र भाई का पड़ा जिनके पिता वैष्णव और माता जैन थीं। उसी समय कोई 20-25 वर्ष की आयु होगी तब ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अस्तेय, और अपरिग्रह के ये

जैन सद्‌गुण उन्हें रायचन्द्र भाई से मिले। यह बात 'नया ज्ञानोदय' के सितम्बर 2019 अंक के सम्पादकीय पृष्ठ पर मधुसूदन, आनन्द द्वारा कही गयीं है।

गांधीजी सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् में विश्वास करते थे। वे कहते थे कि संसार के प्रत्येक प्राणी में ईश्वर का अंश है। इसी वजह से वह मानव सेवा को ही ईश्वर की सेवा मानते थे। गांधी की दृष्टि में सत्य ही सौन्दर्य है और सत्य की व्याख्या और विश्लेषण को वे साहित्य में देखना चाहते थे। उसे ही वे सौन्दर्य की कसौटी का प्रमाण मानते थे। एक समय में तो 'सत्य ही ईश्वर' की अवधारणा पर बल देते प्रतीत होते हैं।

गांधी और रवीन्द्र बाबू राष्ट्रभाषा हिन्दी के समर्थन में एकमत थे। छुआछूत और जातिवाद के विरोधी भी थे। एक समय में शान्तिनिकेतन में भोजन में जो छुआछूत देखने को मिला, वह भेदभाव गांधीजी के प्रभाव के परिणामस्वरूप ही समाप्त हुआ। रवीन्द्र बाबू जब बीमार हुए तो गांधी और बा स्वयं उनसे मिलने शान्तिनिकेतन गए तथा स्वयं रवीन्द्र बाबू ने शान्तिनिकेतन को शान्ति और अहिंसा के रूप में रखने की जिम्मेदारी गांधी को सौंपी थी।

निःसन्देह इसमें कोई शक नहीं है कि उस समय में गांधी देश की राजनीति के सर्वोच्च शिखर के पायदान पर नजर आ रहे थे तो साहित्य का 'नोबेल' पाकर रवीन्द्रनाथ टैगोर साहित्य के शिखर पुरुष के रूप में जाने-पहचाने जा रहे थे। गांधीजी रवीन्द्रनाथ से प्रभावित होकर ही उनके प्रति आकृष्ट हुए थे। जिस तरह राजनीति में गांधी डूबे हुए थे, उसी तरह साहित्य में रवीन्द्र बाबू। हाँ, यह अवश्य है कि दोनों में सहमति असहमति कई जगहों पर उनके विचारों में देखी गयी, लेकिन मन के विचारों में एक-दूसरे के प्रति कभी भी प्रेम की कमी नहीं आयी। दोनों का एक-दूसरे के प्रति आदर-भाव कभी कम नहीं हुआ। रवीन्द्र बाबू गांधी को 'महात्मा' कहते थे, तो गांधी उन्हें 'गुरुदेव' कहकर सम्बोधित करते थे। कई जगहों पर दोनों के विचारों में मतभेद देखने के बावजूद दोनों एक-दूसरे के क़रीब थे। एक वाक्या सुनाता हूँ जब गांधीजी बिहार के भूकम्प पर स्वर्ण हिन्दुओं द्वारा अछूतों पर किये जा रहे अत्याचार को ही पाप का कारण मान रहे थे तब रवीन्द्र बाबू ने इस बात का विरोध भी किया और असहमति भी जतायी थी। कुछ समय बाद गांधीजी स्वयं रवीन्द्र बाबू को 'हरिजन' में लिखे पत्र के माध्यम से अपनी गलती को मानते हैं। उसमें लिखा था कि- "थोड़े दिनों में ही हमें अपने और गुरुदेव में कुछेक विषयों पर मतान्तर दिखाई पड़ा है। हम लोगों में पारस्परिक मत-मतान्तर के बावजूद श्रद्धा और प्रेम में कोई कमी नहीं आयी है।" (हरिजन, 26.02.1934)

गांधी और रवीन्द्र बाबू राष्ट्रभाषा हिंदी के समर्थन में एकमत थे। छुआछूत और जातिवाद के विरोधी भी थे। एक समय में शान्तिनिकेतन में भोजन में जो छुआछूत देखने को मिला, वह भेदभाव गांधीजी के प्रभाव के परिणामस्वरूप ही समाप्त हुआ। रवीन्द्र बाबू जब बीमार हुए तो गांधी और बा स्वयं उनसे मिलने शान्ति निकेतन गए तथा स्वयं रवीन्द्र बाबू ने शान्ति निकेतन को शान्ति और अहिंसा के रूप में रखने की जिम्मेदारी गांधी को सौंपी थी। 1926 ई. के इन्दौर अधिवेशन में गांधी को हिंदी पर कुछ बोलना था तब भी रवीन्द्र बाबू से ही सलाह माँगी थी कि हिंदी के बारे में आपके क्या सुझाव हैं? 26 जनवरी, 1926 ई. को रवीन्द्रनाथ टैगोर ने गांधी को उत्तर दिया था। "अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए निश्चय ही हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।" ('सृजन सरोकार', अक्टूबर-दिसम्बर, 2019)

गांधी और रवीन्द्र बाबू के व्यक्तित्त्व और कृतित्व के सम्बन्ध में कुबेरनाथ राय ने अपनी पुस्तक 'पत्र मणिपुतुल के नाम' से लिखी जो बाद में पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई। यह पुस्तक हिंदी साहित्य में गांधी की वैचारिकी और उसकी क्रियान्विति को समझने में महत्त्वपूर्ण भूमिका के रूप में नजर आती है। यह वैसी ही रचना है जैसी पं. नेहरू की 'विश्व इतिहास की झलक' पुस्तक है। पं. नेहरू जेल-यात्रा के दौरान अपनी पुत्री इन्दिरा को पत्रों के माध्यम से विश्व इतिहास की जानकारी समय-समय पर देते रहे थे और वही पत्र बाद में जाकर पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए। मणिपुतुल गांधी के छोटे भाई की पत्नी थी जिसे वह 'बहू' कहकर पुकारते थे। आगे चलकर ये पत्र 'पत्र मणिपुतुल के नाम' पुस्तक के रूप में 1980 ई. में गांधी पीस फाउंडेशन, नयी दिल्ली से प्रकाशित हुए। इन दोनों के आपसी प्रेम और

पूरकता को कुबेरनाथ राय इन शब्दों में प्रकट करते हैं–" सच तो यह है मणि बेटी के लिए रवीन्द्रनाथ और गांधी जी दोनों एक–दूसरे के पूरक थे। इस बात को दोनों ने ही मंजूर किया है। रवीन्द्र बाबू सौन्दर्य को ग्रहण कर रहे थे तो... गांधी जी सत्य को। एक था आनन्द का प्रतीक, दूसरा तपस्या का। अपने देश का यह सौभाग्य रहा है कि ये दोनों समकालीन थे, दोनों एक–दूसरे को पहचानते थे और मतभेदों के बावजूद दोनों एक–दूसरे में सराबोर थे। ('पत्र मणिपुतुल के नाम', पृ. 51)

आगे फिर एक जगह कुबेरनाथ राय कहते हैं कि, "दोनों एक–दूसरे के पूरक ही नहीं थे बल्कि एक–दूसरे के सहायक भी थे और वैचारिक अन्तर्भेद के व्यक्तित्व भी थे। गांधी जी थे पैगम्बर, रवीन्द्रनाथ थे कवि। परन्तु हर एक पैगम्बर थोड़ा–बहुत कवि जरूर होता है और हर एक महाकवि एक तरह से पैगम्बर ही होता है, क्योंकि बिना दिव्य–दृष्टि के उच्च कोटि की कविता सम्भव नहीं। यहीं कारण है कि 'बाइबिल', 'कुरान' या 'गीता' की भाषा में आग की तरह विशुद्ध निर्मल कविता वर्तमान है और तुलसी–कबीर के भीतर मानवीय इतिहास को पुनर्निर्मित करने की पैगम्बरी शक्ति है। कहने का तात्पर्य यह कि गांधीजी और रवीन्द्रनाथ दोनों 'दो' थे पर दोनों दो होते हुए भी 'एक' के ही दो पहलू थे, छोटे–मोटे प्रश्नों के मतभेद के बावजूद।" (वही, पृ. 52)

गांधी ने साहित्य में श्रृंगार, सौन्दर्य को महत्त्व न देकर रस–रंजन, मनोरंजन से ऊपर लोकसेवा एवं लोकमंगल को सर्वोत्तम महत्त्व दिया। यह लोकमंगल की भावना तुलसी के साहित्य में भी पूरी तरह दिखाई देती है। गांधी का साहित्य नैतिक मूल्यों से भरा पड़ा है। गांधी का साहित्य आम जनता के हितों की बात करने वाला साहित्य है। प्रेम को गांधी हमेशा महत्त्व देते रहे है, वैसे गांधी मीराँ को प्रेम के पदों के रूप में स्वीकार करते हैं। वह मीराँ के प्रेम को सत्याग्रही के रूप में स्वीकार करते रहे हैं।

गांधी साहित्य में धर्म को भी महत्त्व देते हैं और दया, करुणा, प्रेम, सेवा, परदुखकातर की भावना आदि को मूल्यों के रूप में स्वीकार करते हैं। वे मध्यकालीन गुजराती कवि नरसी मेहता और लोक समन्वय कवि तुलसीदास से ख़ासे प्रभावित रहे। नरसी मेहता के भजन को हमेशा गुनगुनाते रहे थे जैसे– 'वैष्णव जन तो तेने कहिए, जो पीड पराई जानी रे' आदि। धर्म सम्बन्धी अवधारणा के सन्दर्भ में गांधी अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में लिखते हैं– "मुझे तो यह वाक्य शास्त्र वचन की तरह लगता है, जैसे दो और दो चार ही होते हैं, ऊपर के वाक्य पर मुझे उतना ही भरोसा है। दयाबल आत्मबल है, वह सत्याग्रह है।" जो इस दोहे के माध्यम से बताते हैं–

'दया धरम को मूल है, देहमूल अभिमान। तुलसी दया न छोड़िये जब लग घट में प्रान।।' ('हिन्द स्वराज', पृ. 70)

गांधी साहित्य की उपयोगिता उसी में मानते हैं जो लोकहित और लोक–समाज के लिए लिखा गया हो। कला की महत्ता भी इसी बात में स्वीकार करते थे कि जो कला हमें यथार्थ का ज्ञान करा के उस जैसा बनाये जो हमारी सोच और चिन्तन को ऊपर उठाये, जो हमें आगे ले जाये। श्रेष्ठ साहित्य वह है जो नैतिकता और आध्यात्मिकता के लिए लिखा जाये। गांधी यह भी कहते हैं कि कभी किसी रचनाकार को अपने मन में पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर किसी तरह का कोई साहित्य लेखन नहीं करना चाहिए। श्रेष्ठ साहित्य वह होगा जो बाह्य मन के बजाय आन्तरिक मन को परिवर्तित करे। गांधीजी अपने जीवन में टॉलस्टॉय से ख़ासे प्रभावित थे। वह कहते हैं कि उस व्यक्ति में सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि जो वह कहते थे उसे उसी रूप में किया करते थे। 'गांधी एक खोज' पुस्तक में श्रीभगवान सिंह गांधी के वाक्य को उद्घृत करते हुए कहते हैं–"तुलसीदास का दिया हुआ साहित्य तो स्थायी है। फिलहाल साहित्य हमें रोटी, घी और दूध ही दे, बाद में हम उसमें बादाम, पिस्ते आदि मिलाकर 'कादम्बरी' जैसा कुछ लिखेंगे।... जनता की उन्नति तभी हो सकेगी जब साहित्य सेवक किसानों, मजदूरों तथा ऐसे ही अन्य लोगों के लिए काव्य–रचना करेंगे, उनके लिए

गांधी ने साहित्य में श्रृंगार, सौन्दर्य को महत्त्व न देकर रस–रंजन, मनोरंजन से ऊपर लोकसेवा एवं लोकमंगल को सर्वोत्तम महत्त्व दिया। यह लोकमंगल की भावना तुलसी के साहित्य में भी पूरी तरह दिखाई देती है। गांधी का साहित्य नैतिक मूल्यों से भरा पड़ा है। गांधी का साहित्य आम जनता के हितों की बात करने वाला साहित्य है।

लिखेंगे। मेरी हार्दिक कामना है कि हमारी जनता सत्य लिखने लगे, सत्य बोलने लगे और सत्य का आचरण करने लगे।" (पृ. 95)

ब्रिटेन के महान वैज्ञानिक और विद्वता से पूर्ण व्यक्तित्त्व के धनी आइंस्टीन महात्मा गांधी से प्रभावित ही नहीं थे, बल्कि असहमतियाँ होने पर आलोचना भी करते दिखाई देते हैं। गांधी और आइंस्टीन कभी अपने जीवन काल में एक-दूसरे से मिले नहीं, सिर्फ पत्रों से ही विचारों का आदान-प्रदान होता था। वह गांधी के अहिंसा और 'सत्याग्रह' सिद्धान्त के बड़े प्रशंसक थे। गांधीजी के 70वें जन्मदिन पर सन् 1931 ई. में अल्बर्ट आइन्सटीन ने एक वक्तव्य जारी किया था जिसका अंश इस प्रकार प्रस्तुत हैं-"अपने लोगों का एक नेता, किसी भी बाह्य ताक़त के द्वारा असमर्थित, एक राजनीतिज्ञ जिसकी सफलता तकनीकी उपकरणों और कलाबाजी पर निर्भर नहीं है, बल्कि उसके व्यक्तित्व की विश्वसनीयता क्षमता पर निर्भर है; एक विजयी योद्धा जिसने ताक़त के इस्तेमाल से हमेशा नफरत की है; एक बुद्धिमान और विनम्र इन्सान, जो सुलझी हुई और अटल बारम्बारता के साथ काम करता है, जिसने अपनी सारी ऊर्जा को अपने लोगों के उत्थान में और उनकी सर्वस्व की भलाई के लिए समर्पित कर दिया है; एक इन्सान जिसने यूरोप की क्रूरतापूर्ण निर्दयता का साधारण मानव की गरिमा से डटकर सामना किया है और इस तरह हमेशा उच्चता और उत्कृष्टता के साथ उभरा है। आने वाली पीढ़ियाँ बहुत सम्भव है कि बहुत मुश्किल से विश्वास करेंगी कि इस तरह के किसी माँस और खून वाले ने कभी इस धरती पर जन्म लिया था।" ('आजकल', अक्टूबर-2019, पृ. 9)

गांधीजी का वह समय पूर्ण रूप से सांस्कृतिक-राष्ट्रवाद के रूप में व्याप्त था और उस समय गांधीजी का प्रभाव हिंदी साहित्य और हिंदी भाषा पर ही नहीं पड़ा, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य पर गांधी का प्रभाव जबरदस्त देखने को मिला। हिंदी के अलावा बांग्ला, तमिल, कन्नड़, उर्दू, तेलुगु, ओड़िया आदि भाषाओं में भी दिखाई दिया। यह प्रभाव भारतीय साहित्य की मूल संवेदना और भावों पर ही नहीं पड़ा, भाषा और शिल्प पर भी चहुँओर दिखाई दिया। वैसे सबसे अधिक प्रभाव तो गांधी जी का गुजराती साहित्य और भाषा पर दिखाई देता है लेकिन इसके अलावा भी गांधी का प्रभाव अन्य अन्तर-अनुशासनात्मक विषयों पर भी देखने को मिलता है। सबसे पहले हिंदी कविता में महात्मा गांधी की उपस्थिति द्विवेदी युगीन साहित्य के कवि ठाकुर गोपालशरण सिंह के महाकाव्य 'जगदालोक' में देखने को मिलती है। इस काव्य में गांधी के कृतित्व और व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। जिनको इन पंक्तियों के माध्यम से समझा जा सकता हैं-"गांधी जी की दिव्य साधना / सफल हुई है अनुपम / विजयी हुए विश्व में फिर से/सत्य, अहिंसा, संयम।" ('सृजन सरोकार', अक्टू. दि. 2019, पृ. 82)

वस्तुतः छायावादी काल और छायावादोत्तर काल (1916-1936 के लगभग) में रचित सम्पूर्ण साहित्य-सृजन पूर्ण रूप से गांधी से ही प्रभावित है। राष्ट्रीय काव्य- धारा के कवियों में अगर गिनती की जाये तो 'एक भारतीय आत्मा' के रूप में पहचान रखने वाले माखनलाल चतुर्वेदी के अलावा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी, सियारामशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आदि के ऊपर पूर्ण रूप से पड़ा। देश-प्रेम के कवि के रूप में पहचान रखने वाले माखनलाल चतुर्वेदी ही एकमात्र ऐसे राष्ट्रीय कवि हैं जिनको 'बापू' के ऊपर 1913 ई. में पहली कविता 'निःशस्त्र सेनानी' शीर्षक से लिखने का श्रेय जाता है। यह उन पर हिंदी में लिखी गयी पहली कविता थी। चतुर्वेदी की गिरफ्तारी पर स्वयं महात्मा गांधी ने 'यंग इंडिया' में लिखा था कि, जेल में लिखी चतुर्वेदी की कविताएँ हिंदी पाठकों के बीच लोकप्रिय हैं।" ('आजकल', अक्टूबर 2019, पृ. 13)

जयशंकर प्रसाद की कालजयी काव्यकृति 'कामायनी' का प्रकाशन 1937 ई. में हुआ था और प्रेमचन्द का उपन्यास 'गोदान' 1936 ई. में लिखा गया था। जब कि गांधीजी का 'हिन्द स्वराज' 1909 ई. में लिखा गया। प्रसाद जी भले ही गांधी के अनुयायी कभी नहीं रहे हो, लेकिन गांधी के जीवन-चिन्तन का प्रभाव प्रसाद साहित्य में बड़ी मात्रा में देखने को मिलता है। गांधीजी जिस तरह 'हिन्द स्वराज' में मशीनी सभ्यता और उपभोक्तावाद की राजनीति का विरोध करते हैं, उसी तरह सम्पूर्ण रूप से प्रसाद 'कामायनी' में आधुनिक मानव जाति को सादगी, सरलता और श्रम-आधारित जीवनचर्या

अपनाकर ही विश्व की मानव जाति को भोग एवं भौतिकवादी सभ्यता की लालसा रूपी तबाही से बचाया जा सकता है, ऐसा सन्देश देते है। वैसे प्रेमचन्द भी 'गोदान' और 'रंगभूमि' उपन्यास में मशीनी सभ्यता और औद्योगीकरण से बचने के सन्दर्भ में अपनी आवाज अपने पात्रों के माध्यम से बखूबी प्रकट करते हैं।

प्रसाद ने 'कामायनी' की रचना पन्द्रह सर्गों में पूर्ण किया। प्रसाद का स्नेह सबसे पहले 'ईर्ष्या' सर्ग में देखने को मिलता है। जब श्रद्धा गर्भवती होती है और उस दौरान मनु का मन उसके प्रति अनुरत न होकर शिकार खेलने में ही ज्यादा लगता है। वह उस अकेलेपन को जिस रूप में काटती है और सोचती है कि आज शिकार खेलने क्या गया, जो बहुत दूर चला गया है। उस समय के खालीपन को श्रद्धा अपने हाथों से तकली चलाकर उस ख़ालीपन में एकरसता भरने का प्रयास करती है। यही बात वह मनु से कहती है–"पश्चिम की रागमयी संध्या अब काली हो चली/किन्तु अब तक आये न अहेरी/वे क्या दूर ले गया चपल जन्तु यों सोच रही मन में/अपने हाथों में तकली रही घूम।"

तुम दूर चले जाते हो जब–तब लेकर तकली, यहाँ बैठ, मैं उसे फिराती रहती हूँ अपनी निर्जनता बीच पैठ। मैं बैठी गाती हूँ तकली के प्रतिवर्तन में स्वर विभोर– "चल री तकली धीरे–धीरे प्रिय गये खेलने को अहेर।" ('कामायनी', पृ. 50, 53) यहाँ पर हम देख सकते हैं कि तकली और श्रम में कितना घनिष्ठ रिश्ता है जो मानव द्वारा चलाया जाने वाला यन्त्र है और यह तकली का स्वर गांधी के चरखे का ही तो स्वर है जो एक साधारण जीवन का भी प्रतीक है। यही चरखा प्रेमचन्द के यहाँ 'गोदान' उपन्यास में भी दिखाई देता है। 'गांधी और हिंदी साहित्य' लेख में डॉ. रेणु व्यास लिखती हैं– "गांधी एक व्यक्ति के साथ–साथ एक युग भी हैं। गांधी के आगमन के साथ–साथ हिंदी साहित्य का भी एक नया युग आरम्भ होता है। गांधी के साथ किसान और गाँव भारतीय राजनीति में केन्द्रीय महत्त्व पाते हैं और इसी दौर में प्रेमचन्द प्रेमाश्रम, 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' की रचना करते हैं तथा देवताओं, राजाओं, अप्सराओं के लिए आरक्षित नायक–नायिका के सिंहासन पर होरी और धनिया विराजमान होते हैं। गांधी के आगमन के साथ दलित–प्रश्न स्वाधीनता आन्दोलन का हिस्सा बनते हैं और साहित्य का भी। प्रेमचन्द के 'सूरदास' दुखी, भंगी और सिलिया के रूप में...।" 'मधुमती', जून–2019)

जाहिर है कि मनुष्य चंचल है। उसका चंचल मन कहीं भी भटक सकता है। तृष्णा मनुष्य को और अधिक पाने के लिए मजबूर करती है। इन्द्रिय सुख ही एक ऐसा सुख है जिसमें मन शान्त रहता है। प्रसाद ने मनु को चंचल मनवृत्तियों वाला बताया है, जिसकी इच्छा भोग और विलासिता में डूब जाती है। वह भूख शान्त होने के बजाय बढ़ती ही जाती है। यह भूख आज की मानव जाति में भौतिकतावादी सुखों को प्राप्त करने के पीछे दिन–रात की भागमभाग और दौड़–धूप करने पर भी आज के मानव की इच्छा अनुरूप पूरी नहीं हो रही है। लेकिन श्रद्धा इस असीमित इन्द्रिय सुख की लालसा रखने वाले को सलाह देती है कि "अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा/यह एकान्त स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा/औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ /अपने सुख को विस्तृत कर लो/सब को सुखी बनाओ।" ('कामायनी', पृ. 47)

स्पष्ट है कि प्रसाद आज के मानव को श्रद्धा के मुख से यह सीख देना चाहते हैं कि हम तब ही सुखी और सम्पन्न रह सकते है जब दूसरों को भी सुखी–सम्पन्न देखने की इच्छा हमारे मन में होगी। आप अगर सुखी–सम्पन्न हैं तो इसका विस्तार कर दूसरे के भी दु:खों का सहारा बनें और अपने भोग–विलास और फिजूलखर्ची को सीमित कर दूसरे के उपयोग के लिए सहयोगी बनें। यही बात गांधी भी 'हिन्द स्वराज' में कहते हैं कि हमने देखा कि मनुष्य की वृत्तियाँ चंचल हैं। उसका मन बेकार की दौड़–धूप किया करता है उसका शरीर जैसे–जैसे ज्यादा दिया जाये वैसे–वैसे ज्यादा माँगता है। ज्यादा लेकर भी वह सुखी नहीं होता। भोग भोगने से भोग की इच्छा बढ़ती जाती है।.... लेकिन हमारे पूर्वजों ने देखा कि लोग अगर यन्त्र वगैरह के झंझट में पड़ेंगे तो गुलाम बनेंगे और अपनी नीति को छोड़ देंगे। उन्होंने सोच– समझकर कहा कि अपने हाथ–पैरों से जो और जितना काम हो सके, वही और उतना प्रकाराम करना चाहिए। हाथ–पैरों का इस्तेमाल करने में ही सच्चा सुख है, उसी में तन्दुरुस्ती है।" ('हिन्द स्वराज', पृ. 45)

आगे जब मनु श्रद्धा के बताये मार्ग पर नहीं चलता और अपने इन्द्रिय सुख पर नियन्त्रण नहीं करता है तो वह फिर दूसरे प्रदेश सारस्वत प्रदेश पहुँच जाता है। वहाँ पर भी उसे भोग-विलास में पूर्ण सन्तुष्टि नहीं मिलती, बल्कि कोलाहल, संघर्ष, व्याकुलता, पीड़ा, अन्धकार यह सब देखने को मिलता है। फिर श्रद्धा वहाँ सारस्वत प्रदेश पहुँचकर जब उसे अपरिग्रह, इन्द्रिय, संयम, अहिंसा, शांति की सीख देती है तब वह नहीं मानता है। ऐसे में वह उसी खोखलेपन और मोविष्ट विलासिता को खण्डित करती हुई कहती है-

श्रममय कोलाहल, पीड़नमय विकल प्रवर्तन महायन्त्र का, क्षण भर भी विश्राम नहीं है प्राण दास है क्रिया-तन्त्र का यहाँ सतत संघर्ष, विकलता कोलाहल का यहाँ राज है, अन्धकार में दौड़ लग रही मतवाला यह सब समाज है। गांधी के अनुसार पश्चिमी सभ्यता बिगाड़ करने वाली है। उत्पादन की नयी-नयी तकनीकी प्रणालियों ने मनुष्य को भोगवादी और विलासी बनाया है। भोगवाद के कारण आज का मनुष्य सच्ची सभ्यता से कोसों दूर हैं। 'कामायनी' में प्रसाद गांधीवादी मूल्यों के माध्यम से यही बताना चाहते हैं कि मनुष्य का मन चंचल प्रवृत्तियों का प्रतिनिधि रूप है जो हमेशा सब कुछ प्राप्त कर के भी अतृप्त ही रहता है और भी भौतिकवादी सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहता है। इसी कारण कि आधुनिक सभ्यता मनुष्य के जीवन में अशांति, अन्धकार, पीड़ा, कोलाहल, संघर्ष, व्याकुलता, बेकार की दौड़-धूप और लोभ आदि को उत्पन्न करने वाली है। इसलिए गांधी शारीरिक सुख-सुविधाओं वाली यान्त्रिक मशीनीकरण का हस्तक्षेप अपने जीवन में कम से कम देखना चाहते हैं। इसलिए एक बार श्रद्धा, मनु को 'कर्म' सर्ग में भी सलाह देती है कि अपने जीवन के सुखों को दूसरों के साथ बाँटो और जितनी आवश्यकता हो उतना ही उपभोग करो।

जिस प्रकार प्रसाद अपने समय के समाज में कोई शापित, पापी, दुखी समाज नहीं देखना चाहते हैं, वैसे ही गांधीजी भी अपने सपनों के भारत में सभी को सुखी-सम्पन्न देखना चाहते हैं। यही हाल तुलसी भी अपने 'रामराज्य' में देखना चाहते हैं। प्रसाद, श्रद्धा के माध्यम से लोकहित की चिन्ता दिखाते हैं और यही लोकहित गांधी और तुलसी के जीवन में भी देखने को मिलता है। श्रद्धा 'आनन्द सर्ग' में कहती हैं- 'शापित न यहाँ है कोई तापित पापी न यहाँ है, जीवन-वसुधा समतल है समरस है जो कि जहाँ है।' (वही, पृ. 121)

छायावाद के दूसरे हस्ताक्षर सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' गांधी से कभी सहमत तो कभी असहमत होते हैं। निराला गांधी के द्वारा चलाये जा रहे अछूतोद्धार और सत्याग्रह जैसे आन्दोलनों की वजह से काफी प्रभावित होते हैं। निराला स्वयं 'महात्मा और हरिजन' शीर्षक टिप्पणी में लिखते हैं-"महात्मा जी भारत के लिए एक दैवीय प्रसाद हैं। हमने अभी तक महात्मा जी को नहीं पहचाना, हमने अभी तक उस दैवीय प्रसाद से पूर्ण लाभ उठाने की चेष्टा नहीं की। महात्मा जी ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी। हरिजन समस्या को जल्दी से जल्दी सुलझाने और यह जताने के लिए कि यदि हम अब भी न चेतेंगे तो दैव की दैव हमारे हाथों से छिन जायेगी।" ('निराला रचनावली', भाग-6) आगे रामविलास शर्मा गांधीजी का निराला के जीवन पर किस तरह प्रभाव पड़ता है, उसे रेखांकित करते हुए कहते हैं- "सत्याग्रह द्वारा अंग्रेज राज का विरोध, अछूतोद्धार के लिए उपहास, अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए प्रचार, निराला की दृष्टि में गांधी जी को महापुरुष बनाने वाले ये तीनकार्य थे।" ('निराला की साहित्य साधना', भाग-2, पृ. 79)

निराला 'राम की शक्ति पूजा' नामक रचना में राम के चरित्र का जो रूप दिखाते हैं, उस सामान्य राम के रूप में एक तरह से कहीं ना कहीं गांधी के ही जीवन-संघर्ष का चित्रण है। 'राम की शक्ति पूजा' में जाम्बवान जब राम को सलाह देते हैं कि तुम्हें जब तक युद्ध में सफलता नहीं मिल जाती तब तक तुम भी सिद्धि की प्राप्ति में लग जाओ। और उनको उत्तर युद्ध द्वारा नहीं सिद्धि द्वारा दो, तो सफलता अवश्य मिलेगी। यह सिद्धि ही तो एक प्रकार से गांधीजी सत्याग्रह का रूप है। वह कहते हैं- "आराधन का दृढ़/आराधन से दो उत्तर/तुम करो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर।" ('राग-विराग', पृ. 200)

निराला ने अछूतोद्धार के लिए 'चतुरी चमार' जैसी कहानी लिखी वे इसलिए शुद्रों के ऊपर किये जाने वाले अत्याचार, दुर्दशा की तकलीफ सुधारने को लेकर हमेशा उन्हें सचेत करते हुए अपनी रचनाओं में देखे गये। उन्होंने 'बेला' नामक काव्य-संग्रह में धोबी, चमार, तेली, नाई,

किसान आदि को ध्यान में रखकर यह कविता लिखी–

जल्द–जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ!

आज अमीरों की हवेली किसानों की होगी पाठशाला, धोबी, पासी, चमार, तेली काशन खोलेंगे अँधेरे का ताला, एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ। (वही, पृ. 137)

जिस तरह गांधीजी स्त्रियों के श्रृंगार प्रसाधनों के उपयोग के खिलाफ थे और उनके आत्मबल पर लगातार जोर देते रहते थे, वही काम निराला 'वह तोड़ती पत्थर' (1937 ई.) कविता में दिखाने का प्रयास करते हैं–"वह तोड़ती पत्थर/देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर/गुरु हथौड़ा हाथ, करती बार–बार प्रहार।" अर्थात् यह बार–बार प्रहार वह निष्ठुर पुरुष प्रधान समाज के जंजालों से मुक्त होकर आत्मनिर्भर, आत्मरक्षा को दिखाने की अभिव्यक्ति है जो आधुनिक समय में महिला के लिए अति आवश्यक है, यही सन्देश गांधी में भी देखने को मिलता है।

छायावादी काव्य के कवियों में जो राष्ट्रीयता, भारतीयता, सौन्दर्यता और मुक्ति की कामना की बात कही गयी है। वह सब की सब उस समय गांधीजी के विचारों और सिद्धान्तों में देखी जा रही थी और चारों तरफ इन्हीं की चर्चा का विषय बना हुआ था। सबसे ज्यादा अगर छायावादी कवियों पर प्रभाव देखें तो सुमित्रानंदन पंत पर देखने को मिलता है। गांधी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर उन्होंने कॉलेज छोड़ दिया था। इसकी चर्चा स्वयं अपनी 'आत्मिका' नामक रचना में भी करते हैं। पंत स्वयं कहते हैं कि, "गांधीजी की 'यंग इण्डिया', 'हरिजन' जैसी पत्र–पत्रिकाओं को और आन्दोलनों को देखने के बाद मेरे मन में भी सृजन–प्रक्रिया बनी और मैंने एक कविता–'बापू के प्रति' लिखी तथा एक लम्बी कविता 'युगान्त' जो 1935 ई. में लिखी गयी 'बापू के प्रति' रचना का अंश इस प्रकार है–

"सुख–भोग खोजने आते सब आये तुम करने सत्य खोज/जग की मिट्टी के पुतले जन/तुम आत्मा के मन के मनोज।" सुमित्रानन्दन पन्त गांधी के प्रभाव का चित्रण बापू काव्य में स्वयं इस प्रकार करते हैं–"बापू तुमसे सुन आत्मा का तेजराशि आह्वान/हँस उठते हैं रोम हर्ष से पुलकित होते प्राण/भूतवाद उस धरा स्वर्ग के लिए मात्र सोपान/जहाँ आत्म–दर्शन अनादि से समासीन अम्लान/नहीं जानता युग विवर्त में होगा कितना जनक्षय/पर मनुष्य को सत्य अहिंसा इष्ट रहेंगे निश्चय/नव संस्कृति के दूत/देवताओं को करने का कार्य/मानव आत्मा को उबारने आए तुम अनिवार्य।"

पंत सत्य और अहिंसा को सांस्कृतिक संघटन का अनिवार्य आयाम मानते हैं, उन्होंने 'युगवाणी' में मार्क्स और गांधी के सिद्धान्तों को छन्दों में पिरोया, जब कि 'ग्राम्या' में गाँव की समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया। यही बात गांधी जी भी बार–बार कहते हैं कि भारत गाँवों का देश है जिसकी आत्मा गाँवों में बसती है। इसी छायावादी युग को विजयदेव नारायण साही 'सत्याग्रह युग' के नाम से पुकारते हैं।

छायावादोत्तर काल के कवियों में अगर हम गांधीवादी साहित्य का प्रभाव देखें तो सबसे ज्यादा प्रभाव माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारी सिंह 'दिनकर', नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अँचल' आदि की रचनाओं में गांधीजी की मानवतावादी भावनाओं का चित्रण देखने को मिलता है।

मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त के बड़े भाई थे। भावनात्मक चिन्तन, संयम और करुणा के पुजारी तो दोनों थे पर सियारामशरण गुप्त अन्तर्मुखी थे और उल्लासिता को प्रमुख स्थान देते थे। जब कि मैथिलीशरण गुप्त बर्हिमुखी थे लेकिन गांधी की राष्ट्रवादी चेतना दोनों की रचनाओं में दिखाई देती है। सियारामशरण गुप्त ने स्वयं 'बापू' (1937) नाम से ही रचना की और इनकी रचनाओं में राष्ट्रप्रेम,करुणा, सत्य, अहिंसा जैसे मूल्य देखने को मिलते हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'भारत–भारती' (1912 ई.), 'साकेत', आदि में देशप्रेम और नारी की समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। 'भारत–भारती' तो उस समय की महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय चेतना से ओत–प्रोत रचना थी। इसी कारण उन्हें 'राष्ट्रकवि' के नाम का दर्जा दिया गया। 'आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास' पुस्तक में बच्चन सिंह कहते हैं कि, "उनके (मैथिलीशरण गुप्त) परिवेश में जो गांधीवादी विचारधारा परिव्याप्त थी। उसका मेरुदण्ड भी वैष्णवी था। किन्तु जो भक्ति उन्हें विरासत में मिली उसका वैष्णपन देश काल के मेल में नहीं था। गुप्त जी ने उसे संशोधित कर मर्यादा पुरुषोत्तम को अपना आराध्य बनाया। गांधी जी के आदर्श भी राम ही थे। उनकी राज्य

कल्पना रामराज्य की कल्पना थी। वह युग मर्यादा और संयम से बँधा हुआ अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहा था। गुप्त जी का काव्य मर्यादा और संयम की डोर से बँधा हुआ नये जागरण का मंत्र फूंकने में सर्वथा समर्थ सिद्ध हुआ।" (आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ. 108)

भवानीप्रसाद मिश्र को अद्वैतवादी, गांधीवादी और तकनीक की सहजता को स्वीकार करने वाले कवि के रूप में जाना जाता है। 'गांधी पंचशती' उनकी एक प्रसिद्ध काव्य-रचना है। जिसमें वह कहते हैं-"एक राह कराहों की है और एक आहों की/एक राह और है उन लापरवाहों की/जो राह की नहीं सोचते/चल पड़ते हैं/किसी उस पुकार पर/जो जितनी बाहर की है उतनी ही है उनके भीतर की।" आगे चलकर देखते हैं तो पाते हैं कि हरिवंशराय 'बच्चन' भी पूरी तरह गांधीवाद से प्रभावित दिखाई देते हैं। वह एक जगह 'खादी के फूल' नामक कविता में कहते हैं- "बापू की छाती की हर साँस तपस्या थी।" इसी उत्तर-छायावादी युग में शिवमंगलसिंह 'सुमन' ने गांधी का मूल्यांकन अपने तरीक़े से किया, वह गांधी को युग-पुरुष के रूप में देखते थे। वह अपनी रचना 'मिट्टी की बारात' में कहते हैं-"कितनी सदियों के पुष्प फले/ तब तुम आये/धरती के जागे भाग/मुक्ति के घन छाये/सौभाग्य हमारा/हाड़-मांस का तन धरते/अपने-सा ही तुमको देखा चलते-फिरते।"

साहित्य को 'संस्कृति के चार अध्याय', 'उर्वशी', 'कुरुक्षेत्र', 'रेणुका' जैसी प्रसिद्ध रचनाएँ देने वाले दिनकर को आधुनिक काल का दूसरा राष्ट्रकवि कहा जाता है। 'दिनकर' न प्रगतिवादियों से ठीक तरह से जुड़ पाते हैं और न ही नव- छायावादियों से। इसलिए बच्चन सिंह कहते हैं- "वे कहीं दोनों धाराओं के बीच में पड़ते हैं। इसलिए कहीं वे गांधीवाद का समर्थन करते हैं तो कहीं सशस्त्र क्रान्ति का, कहीं प्रकृति और नारी-प्रेम की आकांक्षा व्यक्त करते हैं तो कहीं सर्वहारा के उदय की।" 'आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ. 239) रामधारी सिंह 'दिनकर' ने स्वयं बापू के ऊपर बहुत लम्बी कविता 'अघटन घटना' नाम से लिखी, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-"आते ही जिसका रुचिर ध्यान/मन में भर जाता था सुवास/इस एक कल्पना से ही नर/उड़ने लगता था अनायास/हम बापू के हैं समयुगीन/एक ही समय, एक ही काल/ है किरण सूर्य थी वही / जो कि बापू जी को नहलाती है/हम साँस ले रहे वही वायु/जो छूकर उनको जाती है/है धन्य विधाता / जिसने गांधी-युग में हमको जन्म दिया।" ('आजकल', अक्टूबर 2019, पृ. 52)

(3)

राष्ट्रीय काव्यधारा के कवियों में सोहनलाल द्विवेदी और नरेश मेहता ऐसे रचनाकार है जिनकी सम्पूर्ण साहित्य साधना ही गांधीवादी जीवन-मूल्यों से प्रभावित है। नरेश मेहता ने गांधी पर केन्द्रित 'प्रार्थना पुरुष' नामक खण्डकाव्य लिखा जो गांधी जी के जीवन-चरित्र पर आधारित है। जिसको छह विषयों में विभक्त किया गया है। जीवन से साक्षात, तपस्या की ओर, स्वदेश की पुकार, जीवन प्रभाव, समुद्र का आमन्त्रण और स्वाधीनता की ओर। वह कहते हैं कि, "महापुरुष व्यक्ति नहीं हुआ करते वे तो संस्कृति होते हैं। ऐसे पुरुष पर देशकाल चलते हैं। कल तक गांधी हमारे साथ इतिहास में चल रहे थे और आज वह हमारी स्मृति हैं। कुछ काल बाद वह स्मृति भी बन जायेंगे और तब क्या श्रुति बन जायेंगी और तब क्या श्रुति को मिथक बनते देर लगेगी। यह मिथकता ही समग्रता है।" (सृजन सरोकार, दि. 2019, पृ. 83) उसी समय सोहनलाल द्विवेदी का गांधी की अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह और खादी के प्रति अपार स्नेह देखने को मिलता है। 'जय गांधी' नामक पुस्तक में गांधी से सम्बन्धित विचारों का संकलन भी किया गया है। उनकी काव्य पंक्तियाँ हैं- "युग-प्रवर्तक!- युग-संस्थापक! युग संचालक! हे युगाधार! / युग-निर्माता! युग-मूर्ति! तुम्हें, युग-युग तक, युग का नमस्कार।"('आजकल',अक्टूबर-2019, पृ. 50)

राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के युग में एक ऐसे कवि भी थे जिन्होंने गांधी, गांधीवाद और उनसे उपजे अन्तर्विरोध, पाखण्ड, छल-कपट, प्रपंच की दुकानदारी की घोर विरोध के साथ अत्यन्त भर्त्सना भी की। जो 'यात्री' उपनाम से मैथिली में कविता लिखते थे। जिनका बचपन का नाम था वैद्यनाथ मिश्र। यह सिंहल देश में बौद्धधर्म की दीक्षा लेकर वैद्यनाथ मिश्र से 'नागार्जुन' बन गये। इन्होंने गांधी पर बहुत सी कविताएँ लिखीं, लेकिन एक कविता 'तीनों बन्दर बापू के' में व्यंग्य के माध्यम से आधुनिक समय पर कटाक्ष करते हुए लिखते हैं- "बापू के भी ताऊ निकले तीनों बन्दर बापू के... /सौवीं बरसी मना रहे हैं तीनों बन्दर बापू के/बापू को ही बना रहे हैं तीनों बन्दर बापू के..

।" आगे एक अंश में इस प्रकार कहते हैं–"सेठों का हित साध रहे हैं तीनों बन्दर बापू के/सत्य, अहिंसा फाँक रहे हैं तीनों बन्दर बापू के/पूँछों से छवि आँक रहे हैं तीनों बन्दर बापू के/दल से ऊपर दल के नीचे तीनों बन्दर बापू के/मुस्काते हैं आँखें भींचे तीनों बन्दर बापू के।" इसी छायावादोत्तर काल में गांधीवादी साहित्य लिखने वालों में तारसप्तक के कवियों में गिरिजाकुमार माथुर ने 'सायंकाल' और केदारनाथ अग्रवाल ने भी गांधी पर अनेक कविताओं की रचनाएँ कीं।

मार्क्सवादी कवि के रूप में पहचान रखने वाले गजानन माधव 'मुक्तिबोध' भी गांधी से प्रभावित हुए बिना न रह सके। मुक्तिबोध की 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' काव्य-संग्रह में संकलित 'अँधेरे में' नामक लम्बी कविता पूरी तरह से गांधी से प्रभावित रचना मानी जाती है। वह अपनी कविता में 'आत्मा' शब्द का प्रयोग अनेक बार करते हैं। वह स्वयं 'अँधेरे में' में एक जगह कहते हैं- "वह जगत् ही गलियों में घूमता है प्रतिपल/वह फटेहाल रूप / तडित्तरंगीय वही गतिमयता/अत्यन्त उद्विग्न ज्ञान-तनाव वह/सकर्मक प्रेम की वह अतिशयता.... / इसीलिए मैं हर गली में/और हर सड़क पर/झाँक-झाँक देखता हूँ हर एक चेहरा /प्रत्येक गतिविधि/प्रत्येक चरित्र/व हर एक आत्मा का इतिहास/हर एक देश व राजनैतिक परिस्थिति/प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत आदर्श/विवेक-प्रक्रिया, क्रियागत परिणति'। ('चाँद का मुँह टेढ़ा है', पृ. 296) जिस तरह से 'जीवन' को ही अपना 'सन्देश' के रूप में प्रयोग करने पर गांधी जी बार-बार बल देते थे। वही प्रयोग मुक्तिबोध अपने जीवन में भी करने का प्रयास करते हैं। उसी पर अमल भी करते है। मुक्तिबोध 'एक साहित्यिक की डायरी' में लिखते हैं कि, "यदि आप लोग केवल काव्य-सत्य को महत्त्व देते हो तो आप अनजाने ही एक भयानक भूल कर बैठते हो। वह यह कि एक व्यक्ति साहित्य में जिन मूल्यों की स्थापना करता है, वे मूल्य उसके आचरण की मूल प्रेरणा हों, यह आप अपने लिए अनावश्यक 'इररिलेवेंट' मानते हैं, इसका बहुत बुरा परिणाम होता है।" (एक साहित्यिक की डायरी, पृ. 102) एक जगह मुक्तिबोध के बारे में शमशेर बहादुर सिंह कहते हैं कि, "उन युवा साहित्यकारों (मुक्तिबोध) के बीच दार्शनिक और राजनीतिक विचारों का मन्थन... शॉ, इब्सन, बर्गसाँ, रसेल, मार्क्स, रवीन्द्रनाथ, गांधी... बड़ी उत्कण्ठा से पढ़े जा रहे थे।.... मगर गांधी जी का प्रभाव भी कुछ कम नहीं, बल्कि कहीं अधिक व्यापक था।" (चाँद का मुँह टेढ़ा है', पृ. 15) आगे मुक्तिबोध स्वयं 'भारतीय इतिहास और संस्कृति' नामक पुस्तक में कहते हैं कि, "महात्मा गांधी ने देश की स्वाधीनता, विश्व को शांति और मैत्री तथा अन्याय के विरुद्ध अहिंसात्मक प्रतिरोध और मानव हृदय को नैतिक बल प्रदान किया। उन्होंने देश, और विश्व के बड़े-बड़े मनीषियों के विचारों को अपने में रंग दिया, भारतीय जनता को नये आध्यात्मिक संस्कार प्रदान किये।"

गांधीजी द्वारा प्रवर्तित राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलन की हलचल साहित्य में ही नहीं, अन्य अनुशासनात्मक विषयों और सभी भारतीय भाषाओं में भी पूरी तरह देखी गयी। साहित्य में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास सभी में गांधी जी किसी न किसी रूप में साहित्य को प्रभावित करते हुए देखे गये। गांधीजी ये सत्याग्रह, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य जैसे सिद्धान्तों के माध्यम से प्रत्यक्ष ही नहीं अप्रत्यक्ष रूप से भी अपने विचारों की प्रभावोत्पादकता के रूप में दिखाई पड़ते हैं। अगर इस प्रभाव को उपन्यास विधा में देखा जाये तो यहाँ विशेष रूप से मैं प्रेमचन्द, जैनेन्द्र और फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य पर गांधीजी के प्रभाव को रेखांकित करने का प्रयास करूँगा।

समकालीन साहित्य में युवा कवि और चिन्तक डॉ. वेदमित्र शुक्ल के सृजनात्मक साहित्य में गांधी का प्रभाव देखने को मिलता है। गांधी जी पर जैसा बाल कविताओं का सम्पूर्ण संग्रह शुक्ल जी की रचना में देखा गया, ऐसा संग्रह बहुत कम ही लेखकों की गांधी पर रचित रचनाओं में देखने को मिलता है। वेदमित्र शुक्ल जी का बाल-कविताओं का नया संग्रह 'बापू से सीखें' उनके रचनात्मक विकास की प्रामाणिकता सिद्ध करता है। संग्रह बड़ी महीनता से गांधी के बाल्यकाल से जुड़े प्रसंगों और सिद्धान्तों का रोचकता एवं नवीनता के साथ वर्णन करता है। इस संग्रह में गांधी द्वारा बताये गये संस्कारगत मूल्यों, सत्य, अहिंसा, आचरण की शुद्धता, स्वच्छता, बड़ों का आदर-सम्मान, देश-भक्ति की भावना, सत्यमेव जयते, बुरी आदतों को त्यागना आदि से सम्बन्धित भाव चित्रित किये गये हैं।

वस्तुत: अगर यहाँ सबसे पहले प्रेमचन्द के साहित्य के प्रभाव के बारे में बात की जाये और 'रंगभूमि' और 'गोदान' उपन्यास को देखा जाये तो यह दोनों उपन्यास पूर्ण रूप से गांधी जी से प्रभावित हैं। 'रंगभूमि' उपन्यास में गांधी प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित नहीं हैं, लेकिन उपन्यास का पात्र 'सूरदास' का चरित्र पूर्ण रूप से गांधी का ही दूसरा रूप प्रेमचन्द इसमें दिखाते हैं। 'गोदान' उपन्यास में गांधी प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देते, लेकिन गांधी के कार्यों, जीवन-मूल्यों, विचारों का प्रभाव प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलता है।

इसके अलावा प्रेमचन्द की कहानियाँ 'सद्गति', 'मैकू', 'आहुति', 'होली का तोहफा', 'बूढ़ी काकी' में गांधी का प्रभाव पूरी तरह दिखाई देता है।

प्रेमचन्द के 'रंगभूमि' उपन्यास की कहानी मूल रूप से अन्धे सूरदास को लेकर रची गयी कथा है। यह ऐसा सत्यवादी चरित्र है कि मरते दम तक अपनी पाण्डेपुर की जमीन जॉन सेवक जैसे धनवान को नहीं देता है। यह धनवान सूरदास की जमीन के ऊपर सिगरेट का कारखाना लगाना चाहता है और वह उस गाँव के लोगों की जमीन कौड़ियों के भाव ख़रीदकर उन्हें वहाँ से बेदखल करने की इच्छा रखता है। सूरदास मरते दम तक भी इन सबका विरोध करता है। जॉन सेवक तरह-तरह के लालच गाँव वालों को देकर उनकी जमीन खरीद लेता है, लेकिन सूरदास मरते दम तक अपनी जमीन को नहीं बेचता है। वह जानता है कि बड़े-बड़े उद्योग जब यहाँ लगेंगे तो सब के सब अपने ही गुलाम हो जायेंगे और फिर हम भूखे मरेंगे। ऐसे विचार और सोच के साथ हर दृष्टिकोण से गाँववालों को समझाता भी है लेकिन कोई असर नहीं पड़ता है। एक जगह ठकुराइन के पूछे जाने पर सूरदास कहते हैं- "हाँ, लच्छन तो दिखाई देते हैं, चमड़े के गोदामवाला साहब यहाँ एक तम्बाकू का कारखाना प्रकाशम खोलने जा रहा है। मेरी जमीन माँग रहा है। कारखाना खुलना ही हमारे ऊपर विपत आना है।" ('रंगभूमि', सूरदास को इस बात का अच्छे से अन्दाजा था कि यहाँ उद्योगों के खुलने से स्वयं आदमी पराये का नौकर हो जायेगा और स्वतन्त्र/आत्मनिर्भर व्यक्ति अपने आप ही गुलाम बन जायेगा। और यही बात गांधी जी यन्त्रों और मशीनीकरण के विरोध में बार-बार बोलते थे। इस बात को गांधी स्वयं 'हिन्द स्वराज' में मशीनवाले अध्याय में कहते हैं कि, "मशीनें यूरोप को उजाड़ने लगी हैं और वहाँ की हवा अब हिन्दुस्तान में चल रही है। यन्त्र आज की सभ्यता की मुख्य निशानी है और वह महापाप है, ऐसा मैं तो साफ देख सकता हूँ।... बम्बई की मिलों में जो मजदूर काम करते हैं, वे गुलाम बन गये हैं जो औरतें उनमें काम करती हैं, उनकी हालत देखकर कोई भी काँप उठेगा। जब मिलें नहीं थीं तब वे औरतें भूखों नहीं मरती थीं। मशीन की यह हवा अगर ज्यादा चली, तो हिन्दुस्तान की बुरी दशा होगी।" ('हिन्द स्वराज', पृ. 71)

जिस तरह अंग्रेजी प्रतिनिधि के रूप में जो क्लर्क है, वह स्वयं सूरदास से डरता है। वह जानता है कि सूर अन्याय और गलत को स्वीकार नहीं करता बल्कि विरोध करता है, इसलिए जनता उसका आदर और सम्मान भी करती है। यही सारे गुण गांधी जी को अंग्रेजों के खिलाफ करते थे। स्वयं क्लर्क राजा महेन्द्र सिंह से कहता हैं-"हमें आप जैसे मनुष्यों से भय नहीं है, भय ऐसे मनुष्यों से है जो जनता के हृदय पर शासन करते हैं।" ('रंगभूमि', पृ. 52)

प्रेमचन्द ने सूरदास के जो गुण बताये हैं, वे पूरी तरह से गांधी का ही दूसरा रूप हैं, जैसे सूरदास स्वयं लाठी टेककर चलता है तो दूसरी तरफ अन्याय और अनीति उसे न देखी जाती है और न ही सहन हो पाती है। 'रंगभूमि' उपन्यास में लेखक ने स्वयं अपने विचारों और गांधी के उदात्त मूल्यों से किस तरह दोनों के समन्वित रूप से चरित्र को निर्मित किया है, 'क़लम का सिपाही' में अमृतराय के शब्दों में जान सकते हैं- "अपनी सहज मानवी दुर्बलताओं समेत सूरदास का सीधा-सादा सरल निस्पृह, निर्भीक, सत्यनिष्ठ दैनंदिन रूप प्रेमचन्द का अपना है और उदात्त स्वरूप गांधीजी का। अपनी समस्त सवृत्तियों की सबसे उदात्त अभिव्यक्ति के रूप में ही उन्होंने सदा से गांधीजी को अपने हृदय के आसन पर बिठाया है और कुछ अजब नहीं कि सूरदास का चित्रण करते समय उनके मन की आँखों के आगे गांधी जी बराबर रहे हों।" (पृ. 318)

प्रेमचन्द ने सूरदास के व्यक्तित्व का गुण जिस संघर्षशीलता, अन्याय का विरोध, सत्य पर डटे रहना, विस्थापन के विरुद्ध लड़ाई, शोषण और दमनकारी शक्तियों के खिलाफ एकजुट करने की भावना को दिखाया है, वह सब गांधी के चरित्र में भी जीवन्त रूप से विद्यमान था। यही हालत आज के समाज में भी पूरी तरह देखी जा

सकती है बल्कि कम नहीं हुए ज्यादा ही देखने को मिलते हैं। हाँ, रूप जरूर इनका बदला है जैसे–पर्यावरण प्रदूषण की समस्या, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का आना, कौड़ियों के दाम आदिवासियों की जमीनों को सरकार द्वारा लेना और फिर उद्योगपतियों के हाथों सौंपना, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, भेदभाव, मन्दिर–मस्जिद, जातिवाद आदि। सूरदास का चरित्र एक सत्याग्रही योद्धा के रूप में अन्याय और अत्याचार, शोषण के विरुद्ध संघर्षशीलता का प्रकाश पुंज है। सूरदास कहते हैं- "फिर खेलेंगे, जरा दम लेने दो।" एक जगह और कहते हैं- "हार–हारकर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे और एक न एक दिन हमारी जीत होगी।"

प्रेमचन्द अपने अन्तिम उपन्यास 'गोदान' (1937 ई.) में भी गांधी की तरह मशीनीकरण और यन्त्र के विरोधी नजर आते हैं। इस उपन्यास का सम्बन्ध कृषक जीवन की समस्या से है। इसका एक पात्र मि. खन्ना उद्योगपति है और उसके पास एक शक्कर मिल है जिसका उल्लेख बार–बार होता है।

प्रेमचन्द के इस उपन्यास में गांधी द्वारा चलाये जा रहे अस्पृश्यता आन्दोलन का प्रभाव पूर्ण रूप से देखा जा सकता है। गांधी स्वयं भी 1920 ई. के आस–पास के राष्ट्रीय आन्दोलनों के समय पूरे देश में इस अस्पृश्यता को हिन्दू जाति के लिए कलंक मान रहे थे। इसका प्रमाण दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह संघर्ष के रूप में देखा जा सकता है। इस समय गांधी जी लगातार घूम–घूमकर अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का कलंक बताते हुए उसे समाप्त करने की पैरवी भी करते हैं। वे कहते हैं कि, - "आजकल हिन्दू धर्म में जो अस्पृश्यता देखने में आती है, वह उसका एक अमिट कलंक है।....इस अस्पृश्यता का हर एक प्रान्त में, यहाँ तक कि हर एक जिले में, अलग–अलग कितने ही रूप हैं। उसने अस्पृश्यों और स्पृश्यों, दोनों को नीचे गिराया है। .... इसलिए इस बुराई को जितनी जल्दी निर्मूल कर दिया जाये, उतना ही हिन्दू धर्म, भारत और शायद समग्र मानव जाति के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा।" ('मेरे सपनों का भारत", पृ. 266)

यही बात प्रेमचन्द के 'गोदान' में दलित जाति का सवर्णों के विरुद्ध विरोध के रूप में देखने को मिलती है जब दातादीन ब्राह्मण का बेटा मातादीन दलित हरखू की बेटी सिलिया को अपने प्रेम जाल में फँसाकर उसका

उपभोग कर शादी करने से इनकार कर देता है तब दलित जाति यानी चमारों का क्रोध बड़े उग्र रूप में देखने को मिलता है। इसी सन्दर्भ में हरखू स्वयं कहता है- "झगड़ा कुछ नहीं है, ठाकुर, हम आज या तो मातादीन को चमार बना के छोड़ेंगे या उनका और अपना रक्त एक कर देंगे।"

गांधीवाद के प्रभाव के परिणामस्वरूप हृदय–परिवर्तन की घटना 'गोदान' में भी देखने को मिलती है। देखा जाये तो एक घटना मालती के हृदय–परिवर्तन से सम्बन्धित है। जब कि दूसरी घटना होरी–धनिया का अपनी बहू झुनिया को लेकर तथा कहानी 'बूढ़ी काकी' में भी हृदय–परिवर्तन की घटना देखने को मिलती है।

हृदय–परिवर्तन की महत्त्वपूर्ण घटना मि. मालती के जीवन से सम्बन्धित है। जो विदेश से पढ़कर आयी पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित है सौन्दर्य प्रदर्शन और विलासी जीवन में विश्वास रखने वाली वह लड़की जैसे–जैसे प्रो. मेहता के क़रीब आती है, वैसे–वैसे सेवा, त्याग, कल्याण और करुणा जैसी बातें करने लग जाती है। वह एक शिक्षित महिला वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है और गाँवों में अपने कार्यों के दौरान जागरूकता लाने का प्रयास

करती है। वह स्वयं प्रेमचन्द के शब्दों में मालती का परिचय इस तरह देते हैं–"मालती अब अक्सर गरीबों के घर बिना फीस लिये ही मरीजों को देखने चली जाती थी। मरीजों के साथ उसके व्यवहार में मृदुलता आ गयी थी।" इसके अलावा कभी–कभी मालती और प्रो. मेहता गाँवों में भी घूमने के लिए निकल जाया करते थे। इसी सन्दर्भ में यह कथन देखा जा सकता है– "इधर कभी–कभी दोनों देहातों की ओर चले जाते थे और किसानों के साथ दो–चार घण्टे रहकर, उनके झोपड़ों में रात काटकर, और उन्हीं का–सा भोजन करके अपने को धन्य समझते थे।"

देश सेवा का यह राष्ट्रव्यापी आन्दोलन गांधीजी के व्यक्तित्व का प्रभाव कहा जा सकता है। वे स्वयं कहते हैं–"भारत गाँवों का देश है और जब तक गाँवों का विकास नहीं होगा भारत का विकास भी अधूरा ही रहेगा।"

दूसरे हृदय–परिवर्तन की जबरदस्त घटना होरी–धनिया के प्रसंग में भी देखने को मिलती है। जब इनका बेटा गोबर भोलाराम की गर्भवती बेटी झुनिया को अपने घर छोड़ जाता है तो धनिया क्रोध में आग–बबूला होती हुई खेत में होरी को यह सारी घटना सुनाती है। होरी भी इससे पूरी तरह गुस्से से भर उठता है और यहाँ तक कह देता है कि मुझे गोबर को भी अपने घर में अब नहीं रखना है चाहे कुछ भी हो जाये। वह कठोरता के साथ घर में घुस पड़ते हैं लेकिन अपने घर के पास पहुँचते ही उनका गुस्सा शान्त हो जाता है। धनिया होरी से कहने लगती है कि "इतनी रात गये घर से निकालना उचित नहीं है। पाँव भारी है। कहीं मर–मरा जाये, तो और आफत हो जायेगी।" फिर आगे जैसे–जैसे घर के नजदीक पहुँचती है तो उसका हृदय पूरी तरह करुणा में परिवर्तित हो जाता है। वह होरी के गले में हाथ डालते हुए कहती है–"देखो, तुम्हें मेरी सौंह उस पर हाथ न उठाना। वह तो आप ही रो रही है। भाग की खोटी न होती तो यह दिन ही क्यों आता?" फिर आगे इसी तरह होरी का हृदय भी कठोरता से निर्मल करुणा से विचलित हो उठता है तब झुनिया होरी के पैरों में पड़कर गिड़गिड़ाने लगती है। उस कठोर हृदय में करुणा की वेगवती धारा फूट पड़ती है–"डर मत, बेटी, डर मत! तेरा घर है, तेरा द्वार है, तेरे हम हैं। आराम से रह। जैसी तू भोला की बेटी है वैसी ही मेरी बेटी है। जब तक हम जीते हैं, किसी बात की चिन्ता मत कर। हमारे रहते, कोई तुझे तिरछी आँखों न देख सकेगा। भोज–भात जो लगेगा, वह हम सब दे देंगे तू ख़ातिर जमा रख।" अन्ततः फिर होरी और धनिया समाज और दुनिया की परवाह किये बिना झुनिया को बहू रूप में स्वीकार कर लेते हैं। यह हृदय–परिवर्तन की घटना गांधी के जीवन में बहुत–सी जगहों में देखने को मिलती है।

'हिन्द स्वराज' में गांधी जी एक जगह कहते हैं–"यन्त्र आज की सभ्यता की मुख्य निशानी है और वह महापाप है और यह यन्त्रों की हवा हिन्दुस्तान को गुलाम कर देगी।" इसी बात को प्रेमचन्द प्रो. मेहता के माध्यम से एक 'वीमेंस लीग' समारोह में कहते हैं–"राजनीतिज्ञों की निशानी अब केवल लुप्त साम्राज्यों के खंडहर रह गए हैं और आविष्कारों ने मनुष्य को मशीन का गुलाम बना देने के सिवा और क्या समस्या हल कर दी? पुरुषों की रची हुई इस संस्कृति में शांति कहाँ है? सहयोग कहाँ है?"

'गोदान' में गांधी जी के चरखे का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। जब मिल मालिक खन्ना की मिल में आग लग जाती है तो आग लगने के दौरान लेखक चरखे को बचा लेता है। चरखे के सन्दर्भ में दूसरा प्रसंग जब गोबर मिस. मालती के यहाँ नौकरी करने के दौरान अपनी बहन की शादी के लिए जब छुट्टी माँगता है तो मालती छुट्टी ही नहीं देती बल्कि बहन के लिए उपहार स्वरूप चरखा भी देती है। लेखक कहता है–"मालती ने छुट्टी ही नहीं दी, कन्या के उपहार के लिए चरखा और हाथों का कंगन भी दिया।" ('गोदान', पृ. 303)

आगे गांधीजी के इसी चरखे का प्रभाव लेखक उपन्यास के अन्त में भी दिखाता है। जब होरी मृत्युशैया पर पड़ा है तब पं. दातादीन गो–दान लेने के लिए पहुँच जाता है। उसके पास जो कुछ पैसे थे, वह सुतली बेचकर अपने पास रखे थे उन्हीं से अन्त में गो–दान करती है। हीरा ने रोते हुए कहा– "भाभी दिल कड़ा करो, गो–दान करा दो, दादा चले।" धनिया यन्त्र की भाँति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लाये और पति के ठण्डे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली–"महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गो–दान है।" ('गोदान', पृ. 320)

प्रेमचन्द के समकालीन और साहित्य जगत् में चर्चित जैनेन्द्र कुमार ने अपने युवा अवस्था में 1929 ई. में प्रथम उपन्यास 'परख' की रचना कर साहित्य जगत में हलचल पैदा कर दी थी। जैनेन्द्र अक्सर प्रेमचन्द की 'हंस' पत्रिका में छपा करते थे और गांधी जी के राष्ट्रीय और अछूतोद्धार तथा सामाजिक आन्दोलनों से पूरी तरह प्रभावित होकर साहित्य सृजन का कार्य कर रहे थे। जैनेन्द्र ने 'परख' (1929), 'त्यागपत्र' (1937), 'सुनीता' (1935), 'जयवर्धन' (1955) आदि महत्त्वपूर्ण उपन्यासों की रचना गांधीजी से प्रभावित होकर ही की थी। इस सन्दर्भ में वीरभारत तलवार 2008 में 'नया ज्ञानोदय' पत्रिका में छपे लेख में बताते हैं– "जैनेन्द्र बड़े गहरे अर्थों में गांधीवादी थे। सत्याग्रह का प्रयोग प्रेमचन्द के यहाँ भी है। 'रंगभूमि' प्रेमचन्द का एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है जिसमें सूरदास का सत्याग्रह है। लेकिन जैनेन्द्र ने सत्याग्रह सिद्धान्त का इस्तेमाल जीवन के नैतिक प्रश्नों पर किया, स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के सवाल पर किया, समाज के अन्यायपूर्ण मूल्यों और उसके खोखलेपन को दिखाने के लिए किया। 'त्यागपत्र' की मृणाल की पूरी लड़ाई सत्याग्रह की लड़ाई है। गांधी जी का सत्याग्रह सिद्धान्त यही था कि ये मेरा सच है, मैं इससे पीछे नहीं हटूंगा।" गांधी जी की तरह ही जैनेन्द्र भी राज्यसत्ता की अपेक्षा लोकसत्ता में विश्वास रखते हैं। जैनेन्द्र ने सभी उपन्यासों में अहिंसा, करुणा, आत्मबलिदान, त्याग, स्त्री–पुरुषों के प्रति आस्था, सत्य, आत्मपीड़न यह सभी प्रयोग अपने जीवन–कर्म में करके दिखाया है और ये सभी वस्तुतः गांधीवादी मूल्य ही तो हैं जो जैनेन्द्र के चिन्तन में ही नहीं सृजन–कर्म में पूरी तरह देखने को मिलते हैं। आगे वे गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली से प्रकाशित 'गांधी–मार्ग' पत्रिका के जनवरी–फरवरी, 2018 के अंक 'साहित्य के गांधी' में कहते हैं– "जब मुझे उलझन होती है और शायद यह उलझन मेरी सभी रचनाओं में देखी जा सकती है तो मैं बड़े विश्वास और आश्वासन के भाव से गांधी की ओर देखता हूँ। जिसने गांधी की हत्या की, वह निश्चय ही घोर नीतिवादी था। किन्तु यह स्पष्ट है कि गांधी से बड़ा नैतिक पुरुष अर्वाचीन इतिहास में शायद ही कोई दूसरा मिले। प्रचलित और रूढ़ नीति को सबसे बड़ी चुनौती यदि गांधी से प्राप्त हुई और मैं उस गांधी के प्रश्न से और गांधी के उत्तर से, अपने साहित्यिक कृतित्व के लिए सदा ही स्फूर्ति और बल प्राप्त करता रहा हूँ।" (पृ. 27) हिंदी साहित्य में गांधी पर 'गिरमिटिया' नाम से गिरिराज किशोर का पहला उपन्यास आया, जो महात्मा गांधी के जीवन–मूल्यों, विचारों और मान्यताओं से ओत–प्रोत था। इन्हीं के द्वारा कस्तूरबा गांधी पर भी 'बा' नाम से उपन्यास लिखा गया। यही प्रभाव फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' में चरखा और अन्य गांधीवादी जीवन–मूल्यों के रूप में देखने को मिलता है। यही नहीं लोककथाओं और लोकगीतों में भी गांधी का प्रभाव दिखाई देता है। 'मैला आँचल' उपन्यास में एक छोटे–से गीत के माध्यम से देखा जा सकता है– "कवि के चढ़िए आइल वीर जमाहिर/कथि पर गांधी महराज/चलु सखि/हाथी चढ़ल आवे भारत माता/डोलि में बैठल सुराज/चल सखि देखन को।" ('मैला आँचल', पृ. 224)

प्रसिद्ध गांधीवादी चिन्तक और उपन्यासकार राजेन्द्र मोहन भटनागर ने 'कुली बैरिस्टर' नाम से उपन्यास लिखा, जिसमें गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका में संघर्ष की जीवनगाथा है। इनके अन्य उपन्यास 'अन्तिम सत्याग्रही', 'स्वराज्य', 'महात्मा एक अन्तहीन युद्ध' आदि हैं। भटनागर जी इन उपन्यासों के माध्यम से गांधी के जीवन के विविध पक्षों एवं संघर्षों को विचारपूर्ण ढंग से पाठकों के सामने लाते हैं।

भोजपुरी के गीतों में गांधी को इस प्रकार भी गीत–संगीत में पिरोया गया है– "मोरे चरखवा का टूटे न तार/चरखवा चालू रहे/गांधी महात्मा दूल्हा बने हैं/दुल्हन बनी सरकार/चरखवा चालू रहे।"

(4)

गद्य साहित्य की निबन्ध विधा पर दृष्टि डालें तो पायेंगे कि हजारीप्रसाद द्विवेदी, निर्मल वर्मा, कुबेरनाथ राय के सृजन कर्म में गांधी के वैचारिक जीवन–मूल्यों की उपस्थिति अपनी सम्पूर्ण गरिमा के साथ लोक को आलोकित कर रही है। अपनी पुस्तक में कुबेरनाथ राय गांधी जी के साहित्य–दृष्टिकोण की इन विशेषताओं को रेखांकित करते हैं–"(1) गांधी जी के अनुसार साहित्य उच्चगामी होना चाहिए। (2) इसके लिए विषय का उच्चाशय होना जरूरी है। (3) गांधी जी की यह दृष्टि

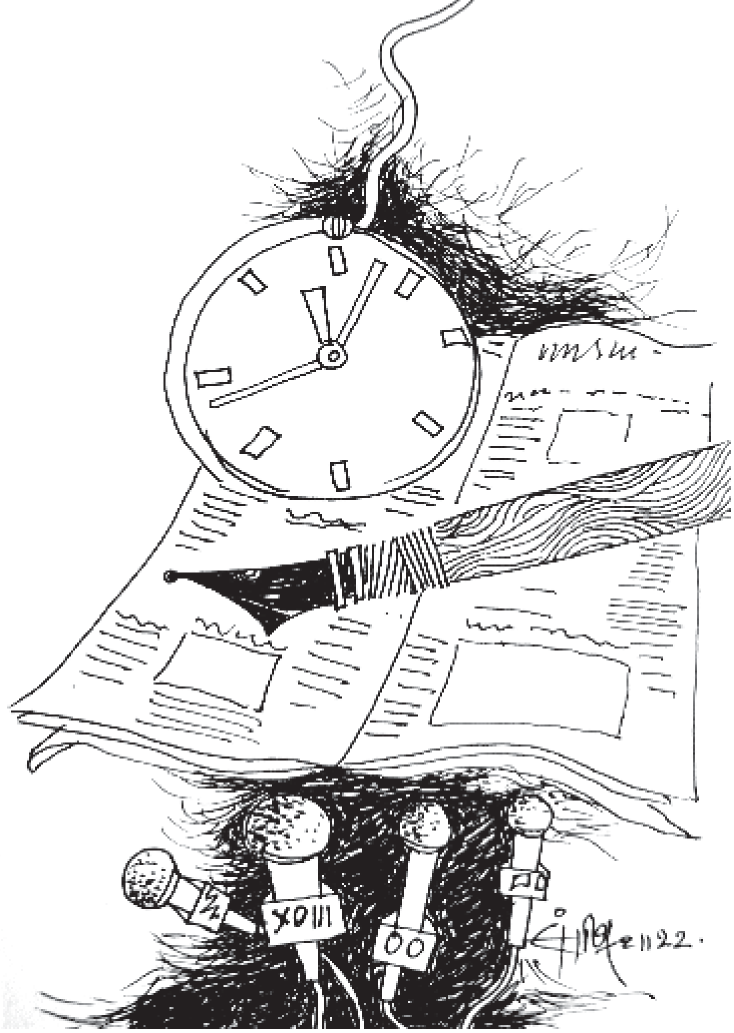

क्लासिकल दृष्टि है। पर क्लासिकल में भी वह जैन दृष्टि या श्रमण रुचि से ज्यादा जुड़ी है। (4) गांधी-दृष्टि से साहित्य में नौ रसों के बीच तीन ही महत्त्वपूर्ण और आस्वाद योग्य रस है : वीर, करुण और शान्त रस। (5) जिस साहित्य में अभय, करुणा, शीलाचार, संयम और आत्मा के विस्तार की अभिव्यक्ति होगी, वह साहित्य गांधी दृष्टि से उच्चगामी होगा।" (पत्र मणिपुतुल के नाम', पृ. 85)

निर्मल वर्मा का साहित्य-सृजन भी गांधी से पूर्णतः प्रभावित नजर आता है। वह स्वयं अपनी डायरी पुस्तक 'धुन्ध से उठती धुन्ध' में कहते हैं-"मुझे ये तीन व्यक्ति क्यों इतना अभिभूत करते हैं, क्यों उनके बारे में सोचते हुए मुझे अपना आपा, इतना दरिद्र, इतना कीचड़ में सना जान पड़ता है। शायद इसलिए कि तीनों के ही- विटगेन्स टाइन, गांधीजी, सिमोनवेल-जीवन और चिन्तन के बीच कोई खाई नहीं थी। उनका व्यक्तित्व एक साफ, अकपित लौ की तरह मेरे भीतर के पाप और अँधेरे को काट जाता है। मेरी कोई प्रार्थना है तो यही (मैंने आज तक सच्चे मन से कोई मनोकामना नहीं माँगी, सिवाय इसके कि मैं अपने लेखन और जीवन को वैसे ही पवित्र और एकाग्र, साधना में समर्पित कर सकूँ, उतनी ही सम्पूर्ण और अबाध रूप में-जैसी उनमें थी।" ('आजकल', अक्टूबर 2019, पृ. 14) इस तरह देखें तो सभी भारतीय भाषाओं, कलाओं, फिल्मों, लोक-संस्कृतियों, लोकगीतों एवं साहित्य की विविध विधाओं में गांधी जी का व्यक्तित्त्व और कृतित्व के प्रभाव का बड़ी मात्रा में चित्रण हुआ है। गांधी के जीवन से प्रभावित होकर जिन रचनाकारों ने नाटक लिखा, सबने गांधी के जीवन, कार्यों और मूल्यों को अलग-अलग तरह से अपनी रचनाओं में पिरोया, जैसे- लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'मृत्युंजय', सेठ गोविन्द दास ने 'राम से गांधी', नन्दकिशोर आचार्य ने 'बापू', गिरिराज किशोर ने 'गांधी को फाँसी दो', असगर वजाहत ने 'गोडसे/गांधी. कॉम', सुनील कुमार सिंह ने 'बापू के नाम', अजीत दलवी ने 'गांधी विरुद्ध गांधी', राजेश कुमार ने 'हिन्द स्वराज', 'गांधी ने कहा था', 'मार पराजय', 'अम्बेडकर और गांधी' आदि कृतियों में। इनके अलावा भी बहुत सारे लेखकों ने गांधी से प्रभावित होकर नाटक लिखे। राजनैतिक और सामाजिक चिन्तक गिरिराज किशोर का 'गांधी को फाँसी दो' नाटक दक्षिण अफ्रीका की पृष्ठभूमि पर आधारित है। दक्षिण अफ्रीका में बिताये उनके सत्याग्रह और अंहिसा का प्रयोग कितना सफल असफल रहा है, उसी पर आधारित है यह नाटक। यह नाटक गोरों द्वारा अफ्रीका में भारतीय मूल के लोगों पर किये गये अत्याचारों का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत करता है। वैसे इस नाटक का सम्बन्ध 'हिन्द स्वराज' की रचना-प्रक्रिया से भी जुड़ा है। इस नाटक में जिस तरह गांधी जी यन्त्र और मशीनीकरण का विरोध जगह-जगह करते हैं, जिस तरह गोदान में एक पात्र कहता है कि मशीनें और उद्योग लगने से आदमी दूसरे के अधीन हो जायेगा। जिस तरह उसकी स्वतन्त्रता दूसरे के अधीन हो जाती है और फिर वह स्वयं का नहीं दूसरों का गुलाम हो जाता है। उसी तरह इस नाटक में गांधीजी कहते हैं लेकिन आज मशीन पूँजी बन गयी है। वह उस मनुष्य को जो अपनी मेहनत और हुनर का मालिक था, वेतनपायी बना रही है। काम की आजादी छीन रही है। मनुष्य और मनुष्य के बीच असमानता लाने का स्थायी माध्यम बन रही है। रिश्ते बिगाड़ रही है। काम करने की दक्षता और स्वाभिमान की कमी को पराधीनता में बदल रही है।...न जाने इन मशीनों ने कितने कलाकारों को जान देने के लिए मजबूर किया होगा। इस परनिर्भरता को आत्मनिर्भरता का नाम दे दिया गया है।

परनिर्भरता गुलामी का प्रतीक है। यह कैसी विडम्बना है।" ('गांधी को फाँसी दो', पृ. 22)

गांधी जी आधुनिक सभ्यता को हिंसा का दर्शन मानते हैं। वह कहते हैं कि हिंसा भय और दमन का अहसास कराती है। भय और दमन असुरक्षा के द्योतक हैं। उनका कहना था कि अगर आपके ऊपर लगातार कोई अत्याचार कर रहा है और उसका अगर आप प्रतिरोध नहीं करते हैं। तो उस अत्याचार को बढ़ाने में आप स्वयं भी कहीं ना कहीं जिम्मेदार हैं। इसी सन्दर्भ में गांधी जी कहते हैं कि दक्षिणी-अफ्रीका में जो गोरों द्वारा अत्याचार में बढ़ोतरी हुई, उसकी एक वजह गांधी यह भी बताते हैं कि भारतीय लोगों द्वारा उस अत्याचार का विरोध न करना और उसको सहन करना भी उसे बढ़ावा ही है। गांधी जी कहते हैं- "अत्याचार बर्दाश्त करना क्या उसे बढ़ावा देना नहीं? अगर ऐसा था तो उन्हें विरोध नहीं करना चाहिए था? तुमने देखा है, मैंने दक्षिण अफ्रीका में हर धर्म और वर्ग को साथ लेकर गोरी सरकार के दमनकारी क़ानून का विरोध किया है।" (वही, पृ. 42)

इसी प्रकार सुनील कुमार सिंह का 'बापू के नाम' नाटक एक प्रकार से तीन एकांकियों का एक सम्मिलित संग्रह है। इस नाटक के द्वारा दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी के अफ्रीका प्रवास के दौरान अंग्रेजों द्वारा की गयी भारतीय मजदूरों की दुर्दशा को देखकर उनके हितों के लिए सत्याग्रह आन्दोलन चलाना और भारतीय जनता को जागरूक करना दिखाया गया है। 'काँटों की राह' और 'जेल चलो' में गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका में रहने के दौरान की छोटी-मोटी घटनाओं का उल्लेख किया गया है। इसी तरह गांधीजी के साथ उनकी पत्नी कस्तूरबा भी भारतीय मूल के लोगों की सहायता करने लगती हैं। उनके ऊपर किये गये अत्याचारों के कारण दुर्दशा को प्राप्त व्यक्तियों का अस्पतालों में इलाज करवाती हैं। एक वृद्धा कस्तूरबा से कहती है-"तूने इतना कर दिया, बेटी, यही बहुत है... वरना यहाँ के अस्पतालों में गोरे डॉक्टर हम हिन्दुस्तानियों को हाथ भी नहीं लगाते, हमसे घृणा करते हैं. .. पाँच साल के एग्रीमेंट पर काम करने के लिए हमें यहाँ लाया गया... और हम हो गए गिरमिटिया... कुली कहकर हमारा अपमान करते हैं ये गोरे।" (पृ. 16)

एकांकी 'जेल चलो' में गांधी 'बा' को अपने अधिकारों के लिए आन्दोलन करने और जेल जाने तथा सत्याग्रह करने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं-"जिस तरह हम पुरुष लोग सरकार से लड़ते हैं, अपने अधिकारों के लिए। उसी तरह तुम स्त्रियाँ भी सरकार से लड़ो...।" (पृ. 31)

समकालीन नाट्य साहित्य में गांधी के जीवन-दृष्टिकोण और मूल्यों को लेकर नाटक लिखने वालों में राजेश कुमार का एक महत्त्वपूर्ण नाम है। इनके नाटकों में 'अम्बेडकर और गांधी', 'गांधी ने कहा था', 'हिन्द स्वराज' और 'मार पराजय' आदि प्रमुख हैं। राजेश का 'अम्बेडकर और गांधी' नाटक काफी महत्त्वपूर्ण है। और यह मंचन की दृष्टि से भी सफल नाटक है। देश के कई शहरों में इसका मंचन सफल रहा। इस नाटक में भारतीय समाज में फैल रही कुरीतियों, जाति-पाँति, धर्म, वर्ण की समस्याओं को गांधी और अम्बेडकर दोनों के दृष्टिकोण के बरक्स समानता और असमानता के विभिन्न मुद्दों के जरिये उठाया गया है। राजेश कुमार स्वयं इस नाटक के बारे में लिखते हैं-"नाटक का उद्देश्य केवल दो नायकों को मंच पर लाना नहीं है। न उनकी कोई जीवन-गाथा दिखाना। यह नाटक दो विभिन्न प्रकार की विचारधाराएँ सामने लाता है। गांधी हृदय-परिवर्तन में विश्वास करते हैं। उनका मानना था कि मनुष्य के अन्तर्मन में होने वाला बोध और परिवर्तन ही सुधार का वास्तविक माध्यम है। सवर्णों के मन में छोटी जातियों और दलितों के प्रति अस्पृश्यता के जो भाव हैं, हृदय-परिवर्तन के द्वारा ही इनमें सुधार सम्भव है।..." जब कि अम्बेडकर का मानना था कि यह व्यवस्था हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी कमजोरी है। जब तक वर्ण व्यवस्था समाप्त नहीं होगी, जात-पाँत का रोग समाप्त नहीं होगा। समाज में व्याप्त असमानता, ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं मिट सकता। उनका कहना था, "सामन्तवाद को ख़त्म करके ही वर्णाश्रम व्यवस्था को समाप्त किया जा सकता है और अपने विकास में अम्बेडकर इसलिए हिन्दू धर्म से बाहर चले जाते हैं।" इनका दूसरा नाटक 'गांधी ने कहा था' में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के भारत में गांधीवादी आदर्शों की उपस्थिति को पुरजोर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यह नाटक

हिंसा–नफरत, धार्मिक भेदभाव करने वालों का पुरजोर खण्डन करता है। आजादी के बाद के साम्प्रदायिक दंगों की आग को वह हर हाल में रोकना चाहते हैं। वह चाहते हैं, अहिंसा और सत्य पर आधारित समाज निर्मित हो। इसमें एक पात्र कहता है–"तब लगा कि सवाल हिन्दू या मुसलमान... हिन्दुस्तानी या पाकिस्तानी का नहीं दरअसल लड़ाई इन्सानियत और हैवानियत के बीच है।... सत्य मरा नहीं है। सत्य जिन्दा है। तुम हारे नहीं हो, अब्बू... हारी तो हिंसा है... बुरा तो वह विचार है जो आदमी और आदमी में फर्क़ बताता है... घृणा–नफरत की तालीम देता है, अब्बू, अगर मैं गांधी का विश्वास या उनका सत्य या... तो मेरा भी एक सत्य है, विश्वास है...।" राजेश कुमार का अगला नाटक 'मार पराजय' यह गांधी जी के ब्रह्मचर्य सिद्धान्तों पर आधारित नाटक है। इस सन्दर्भ में राजेश कुमार लिखते हैं–"आज मन- वचन, कर्म और ज्ञानेन्द्रियों के नियन्त्रण पर जिस तरह की गिरावट आयी है उसका जीवन्त उदाहरण आज का हमारा समाज, राजनीति, धर्म और संस्कृति का वर्तमान स्वरूप है।... कोई भी व्यक्ति एक दिन में महान नहीं होता, एक दिन में कोई नायक से महानायक नहीं बनता। एक दिन में कोई व्यवस्था धराशायी नहीं होती... उसकी प्रक्रिया होती है।... उसी प्रक्रिया को ढूँढना 'मार पराजय' के रूप में एक प्रयास भर है।" ('सबलोग', अक्टूबर, 2019)

राजेश कुमार का चौथा नाटक गांधी के द्वारा रचित 'हिन्द स्वराज' के नामकरण पर केन्द्रित है। इसमें वे आजाद भारत के बारे में चिन्तन–मनन करते हुए देखे गये। स्वतन्त्र भारत को अब किन–किन समस्याओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा और उससे कैसे निपटा जायेगा जैसे विचारों को लिखा गया है।

आधुनिक रंगमंच की दुनिया के प्रख्यात नाटककार और चिन्तक असगर वजाहत का 'गोडसे/गांधी.कॉम' नाटक एक काल्पनिक घटना है जिसमें गोडसे और गांधी की विचारोत्तेजक बातचीत है। किस तरह से दोनों अपनी–अपनी विचारधारा को अपने–अपने तरीक़े से एक–दूसरे के सामने रखते हैं। ये संवाद वहाँ से शुरू होता है जब गोडसे द्वारा चलायी गयी गोली गांधी जी को नहीं लगती है, यह एक काल्पनिक तथ्य है। उसके बाद के आपसी संवादों में बड़ा ही यथार्थ वर्णन किया गया है। वे इस नाटक में गांधी के सत्य, अहिंसा, सत्ता, सेवा आदि का एक नया अर्थ गढ़ते हैं और स्वच्छता पर ध्यान भी विशेष रूप से रखते हैं। गांधी और गोडसे के आपसी विचारों को इस अंश के माध्यम से समझा जा सकता हैं–

"नाथूराम : तुम हिन्दुओं के शत्रु हो... सबसे बड़े शत्रु... इस देश को और हिन्दुओं को तुमसे बड़ी हानि हुई है... हिन्दू, हिंदी, हिन्दुस्तान अर्थात् हिन्दुत्व को बचाने के लिए एक क्या मैं सैकड़ों की हत्या कर सकता हूँ।

गांधी : ये तुम्हारे विचार हैं... मैं विचारों को गोली से नहीं, विचारों से समाप्त करने पर विश्वास रखता हूँ।

नाथूराम : मैं अहिंसा को अस्वीकार करता हूँ।

गांधी : तुम्हारी मर्जी... मैं तो यहाँ केवल यह कहने आया हूँ कि मैंने तुम्हें माफ कर दिया।

नाथूराम : (घबराकर)... नहीं... नहीं... ये कैसे हो सकता है?

गांधी : (शान्त स्वर में, गोडसे... तुमने अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनी... मुझे मेरी अन्तरात्मा की आवाज सुनने दो...।"

इस नाटक में गांधी स्त्री–पुरुष सम्बन्धों, विवाह, ब्रह्मचर्य आदि विचारों में नरमी के साथ देखे गये हैं। गांधी और गोडसे के विचारों के सम्बन्ध में लेखक स्वयं कहता है– "गांधी के बड़े विरोधी सावरकर थे जो भारत को हिन्दू राष्ट्र बनाने के समर्थक थे। नाथूराम गोडसे वीर सावरकर के विचारों से अत्यधिक प्रभावित थे। उन्हें लगता था, गांधी भारत को हिन्दू राष्ट्र बनाने के रास्ते में बड़ी बाधा हैं। उन्हें यह भी लगता था कि गांधी मुसलमानों और पाकिस्तान के समर्थक हैं। गांधी के विचारों और उनकी राजनीति से टकराना हिन्दूवादी शक्तियों के बस की बात न थी, इसलिए उनके लिए गांधी की हत्या ही एकमात्र रास्ता बचता था। गांधी स्वयं पक्के हिन्दू थे। गोडसे भी पक्के हिन्दू थे। एक पक्के हिन्दू ने दूसरे पक्के हिन्दू की हत्या क्यों कर दी? यह विषय नाटक के एक केन्द्रीय सरोकार के रूप में उभरकर सामने आता है।" (पृ. 6)

इस नाटक के केन्द्र में गांधीवादी विचारों की प्रधानता है। इसका मूल कथानक एक प्रकार से राजनीतिक विचारों के साथ मानवीय सम्बन्धों के अन्तर्द्वन्द्व को भी प्रस्तुत करता है।

समकालीन हिंदी जगत् के प्रख्यात नाटककार, गांधीवादी चिन्तक, आलोचक एवं दर्शन के अध्येता तथा चौथे सप्तक के कवि नन्दकिशोर आचार्य का 'बापू' नाटक सत्य और अहिंसा के प्रयोग के सिद्धान्त पर रचा गया। इसमें नाटककार ने गांधी को संघर्ष करते या सत्याग्रह करते हुए अपनों से अकेला या अलग कर दिया है। गांधी स्वयं कहते हैं कि जो लोग एक समय में मेरे साथ खड़े रहते थे, मेरे सुख-दु:ख के सहभागी बनते थे, आज वही सब लोग मेरे से दूर हो गये।

'बापू' नाटक की प्रथम प्रस्तुति 2005 में श्रीराम सेंटर, दिल्ली में हुई और अब तक इसे पूरे देश में पचास से ज्यादा बार मंचित किया जा चुका है। गांधी जी स्वयं कहते हैं कि मेरे बाहर के दु:ख तो सबको दिखते हैं पर मेरे अन्दर के दु:खों को कोई नहीं समझता। वह कहते हैं- "पाँवों के ये घाव और फटी बिवाइयाँ तो सबको दिख जाती हैं, लेकिन वे घाव नहीं दिखते किसी को जो मेरी आत्मा में हो गये हैं। कौन-सी चप्पलें बचा सकती हैं आत्मा को उन घावों से? किसने विष दिये हैं ये कील-काँटे और कंकड़-पत्थर मेरी आत्मा की राह में? ये तो मुझे शुरू से मालूम था जब से इस रास्ते पर कदम बढ़ाये तभी से कि ये राह आसान नहीं है। लेकिन तब ये कील-काँटे चुभते नहीं थे, सहलाते थे मेरी आत्मा को जैसे फूल की तरह। क्या इसलिए कि वे मेरी आत्मा का इम्तिहान थे? और मैं उनमें कामयाब होता चला गया। प्रेम और अहिंसा के इम्तिहानों में।" ('रंग-यात्रा', पृ. 345)

फिर आगे गांधी जी कहते हैं कि यह काँटें मेरे अपनों ने ही मेरे रास्तों में बिछाये हैं कोई दूसरा नहीं था। मेरे अपनों को दु:ख इस बात का था कि मेरी अहिंसा और सत्याग्रह का अभियान सफल क्यों हो रहा है? दु:ख मुझे इस बात का है कि यह लोग मेरा साथ देने के बजाय मेरे सत्य का विरोध कर रहे हैं। सत्य को अस्वीकार कर रहे हैं, यह मेरे साथी सरदार, जवाहर, राजाजी, मौलाना और राजेन्द्र जी-ये ही नहीं सभी कांग्रेसीजन भी शामिल हैं जो मेरे सत्य को स्वीकार नहीं कर रहे हैं और अब मुझे नहीं मान रहे हैं। इस दु:ख, पीड़ा को गांधी जी एक जगह कहते हैं-"मुझे लगता है कि मैं अपने रास्ते पर अकेला रह गया हूँ। अकेले चलने में तकलीफ नहीं हैं-तकलीफ ये है कि जिदगी भर के मेरे हमराही न केवल मुझे छोड़कर चल दिये-वे उसे गलत, सनकी शायद ऐसा बेवकूफ तक समझने लगे हैं। जो वास्तविकता को नहीं समझ सकता।" (वही, पृ. 352)

गांधी अपने अकेलेपन पर चिन्तित होते हैं और सोचते हैं कि सत्ता का नशा ही हर किसी को या अपने को अकेला कर देता है। जैसे मेरे मुझे इस तरह छोड़ दिये हैं-जैसे कोई परिवार अपने पिता को बाहर कर दे। जब कि सब लोग उसे 'बापू' कहकर पुकारते थे। वह कहते हैं कि सत्ता का नशा विभाजन और अपनों को अलग करने का कारण हो ही जाता है आगे कहते हैं-"आजादी के वक्त हममें जितनी एकता थी, आज आपस में उतनी ही फूट है। सत्ता की लालसा ने हमें गिरा दिया है।" (वही, पृ. 354)

गांधी जी कहते हैं कि मुझे इस बात का बिल्कुल भी दु:ख नहीं है कि मुझसे सलाह क्यों नहीं ली जाती, बल्कि दु:ख इस बात का रहता है कि हम आज पहले की तरह एक नहीं रहे। सब अलग-अलग हो गये। इसलिए हम चुनौतियों का सामना करने में विफल होते जा रहे हैं। गांधी जी अपने जीवन-दर्शन में सत्य और अहिंसा को हिंसा के बजाय सफलता के रूप में देखते थे और उनका एक महत्त्वपूर्ण हथियार सत्य और अहिंसा ही था जो इस नाटक का एक महत्त्वपूर्ण अंश है। इसी नाटक के अन्त में वह स्वयं कहते हैं-"प्रमाण होगा कि हिंसा अपनी सारी ताक़त लगाकर भी अहिंसा को झुका नहीं सकी है-अकेले की अहिंसा को भी।" (वही, पृ. 360) 'गांधी विरुद्ध गांधी' नाटक के रचयिता मराठी के प्रसिद्ध रंग-चिन्तक अजीत दलवी जिनकी इस कृति का अनुवाद अनुया दलवी ने किया है, जो सबसे पहले 1995 में मराठी रंगमंच पर खेला गया था। इस नाटक की कथा गांधी जी और उनके ज्येष्ठ पुत्र हरिलाल के बीच उनके रिश्तों के सम्बन्धों को लेकर रची गयीं। जब कि एक तरफ बेटा इस्लाम स्वीकार करता है और पिता देश-सेवा के लिए प्रण किये सिद्धान्तों से समझौता करने के लिए सहमत नहीं होता, चाहे इसके बीच परिवार ही क्यों न आड़े आ जाये? यही बात पिता-पुत्र के प्रेम में जहर घोलती है। भूमिका में लेखक स्वयं कहता हैं-"माना कि आप दुनिया के बापू होंगे, लेकिन जिनको मैं जिन्दगी भर ढूँढ़ता रहा वो बाप आप कभी नहीं बन सके। उसका यह दु:ख स्वाभाविक ही लगता है। गांधी जी की

भूमिका गलत नहीं थी लेकिन हरिलाल के दु:ख को नजरअन्दाज नहीं कर सकते। यही विचार इस नाटक के केन्द्र में है।" निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि गांधी एक व्यक्ति नहीं विचार है। एक सत्य हैं, नैतिक मूल्यों का पक्षधर भर नहीं बल्कि जीवन्त नैतिकता। गांधी का भारतीय समाज और उसकी सम्मिलित संस्कृति से गहरा सम्बन्ध रहा है। गांधी जी के अन्दर सत्य और अहिंसा की जो ताक़त है, वह समाज के अन्तिम व्यक्ति में भी देखने को मिलती है। इसीलिए गांधी न कभी मरे थे और न आगे किसी के द्वारा मारे जा सकेंगे। जन-जन के हितों के लिए लड़ने वाले एक शख़्सियत के रूप में गांधी की भारतीय समाज ही नहीं बल्कि विश्व समाज में भी मान्यता है।

अपनी पुस्तक 'गांधी : जीवन और दर्शन' में आचार्य कृपलानी लिखते हैं- "यदि सत्य से जुड़े रहना और नैतिक नियमों को सर्वोपरि मानना आधुनिकता है तो गांधी जी आधुनिक थे। वचन का पालन करना और अपने हाथ में लिये हुए काम को समय पर पूरा करना आधुनिक मान्यता है तो गांधी जी आधुनिक थे। भिन्न विचार और विरोधियों के साथ भी अच्छा बर्ताव करना आधुनिकता है तो गांधी जी आधुनिक थे। यदि सत्ता या सम्पत्ति पर ध्यान न देकर सभी के प्रति समभाव रखना आधुनिकता है तो गांधी जी आधुनिक थे। यदि गरीबों, जरूरतमन्दों, दलितों, दरिद्रों के लिए अथक कार्यरत रहना आधुनिकता है तो गांधी जी आधुनिक थे और सर्वोपरि बात यह कि किसी उदात्त उद्देश्य के लिए मृत्यु को गले लगाना आधुनिकता है तो गांधी जी आधुनिक थे।" ('आजकल', अक्टू, 2019, पृ. 4) इसका मतलब यही है कि सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, सहिष्णुता, भाईचारा, त्याग, संवेदनशीलता, प्रेम, अन्याय का विरोध आदि जैसे मूल्यों को त्यागकर न तो आधुनिक हुआ जा सकता है और न ही किसी प्रकार का विकास निर्मित किया जा सकता है। इसलिए अगर विकास करना है, आधुनिक होना है तो यह मूल्य किसी तरह कोई रुकावट नहीं है और न ही इनके बिना आधुनिक हुआ जा सकता है।

गांधी जी का प्रभाव भारत के राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन पर ही नहीं, बल्कि विदेशी परिवेश पर भी देखने को मिलता है। हिंदी ही नहीं बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं पर भी गांधी का प्रभाव पूरी तरह दिखाई देता हैं। गांधी ने भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता के आन्दोलन के नेतृत्त्व के साथ-साथ भारतीय चिन्तन, दर्शन, समाज-सुधार, आर्थिक व्यवस्था, सत्य, अहिंसा जैसे जीवन-मूल्यों को भी भारत के अलावा विश्व स्तर पर जीवन्त बनाया उनकी उपयोगिता बढ़ायी। गांधी के विचारों में समय के साथ-साथ विकास भी होता गया।

वे सत्य और अहिंसा के बल पर अपनी सम्पूर्ण मानव जाति को गुलामी से मुक्त करने का साधन मानते थे। गांधी से प्रभावित और प्रेरित सृजनात्मक साहित्य भारतीय भाषाओं में ही नहीं बल्कि विदेशी भाषाओं में भी लिखा गया जो शायद किसी अन्य व्यक्ति या विचारधारा पर ऐसा देखने को नहीं मिला जैसा गांधीजी पर देखने को मिलता है। गांधी से प्रभावित विचारों का प्रभाव साहित्य की विभिन्न-विधाओं और अनेक भाषाओं में देखने को मिलता है। गांधी राजनीति का सम्बन्ध धर्म से मानते हैं और आध्यात्मिकता को सबसे बड़े साधन के रूप में देखते हैं। वह कहते हैं कि राजनीतिक शक्ति अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं है बल्कि लोगों की दशा सुधारने का एक साधन है। वह यह भी कहते हैं कि सबसे अच्छी सरकार वह है जो सबसे कम शासन करे।

आज अगर देखा जाये तो गांधी जी भूत भविष्य और वर्तमान के मिलन की रेखा बिन्दु का नाम है। हमने जिस तरह गांधी के विचारों को पहनकर मैला-कुचैला करके फेंक दिया है, उसी तरह अगर हम गांधी के जीवन मूल्यों को आत्मसात करें, तो मैं मानता हूँ कि हम वर्तमान में रामराज्य की कल्पना में ही जिये नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष रूप से रामराज्य के समाज का प्रत्यक्ष दर्शन भी कर सकते हैं। गांधी के जीवन-मूल्यों से ही हम व्यापक और सुदृढ़ रामराज्य रूपी समाज का निर्माण कर सकेंगे।

संपर्कः
हिंदी विभाग, असिटेंट प्रोफेसर
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी 221005
मो. 8010776556
ईमेल आईडी: lehariram@gmail-com

केदारनाथ सिंह

मेरी भाषा के लोग

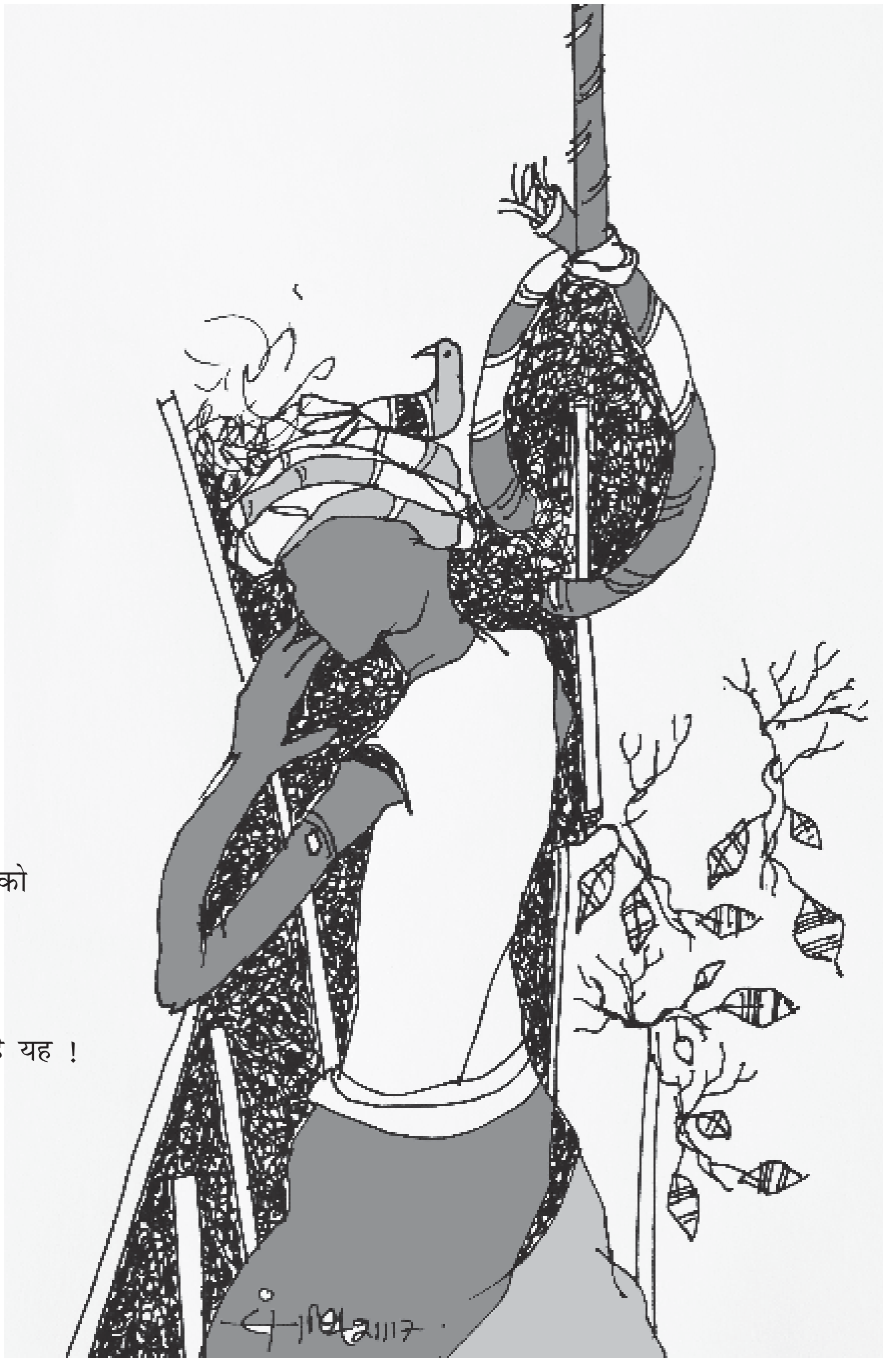

मेरी भाषा के लोग
मेरी सड़क के लोग हैं
सड़क के लोग सारी दुनिया के लोग

पिछली रात मैंने एक सपना देखा
कि दुनिया के सारे लोग
एक बस में बैठे हैं
और हिन्दी बोल रहे हैं
फिर वह पीली-सी बस
हवा में गायब हो गई
और मेरे पास बच गई सिर्फ मेरी हिन्दी
जो अन्तिम सिक्के की तरह
हमेशा बच जाती है मेरे पास
हर मुश्किल में

कहती वह कुछ नहीं
पर बिना कहे भी जानती है मेरी जीभ
कि उसकी खाल पर चोटों के
कितने निशान हैं
कि आती नहीं नींद उसकी कई संज्ञाओं को
दुखते हैं अक्सर कई विशेषण
पर इन सबके बीच
असंख्य होठों पर
एक छोटी-सी खुशी से थरथराती रहती है यह !

तुम झाँक आओ सारे सरकारी कार्यालय
पूछ लो मेज से
दीवारों से पूछ लो
छान डालो फाइलों के ऊँचे-ऊँचे
मनहूस पहाड़
कहीं मिलेगा ही नहीं

इसका एक भी अक्षर
और यह नहीं जानती इसके लिए
अगर ईश्वर को नहीं
तो फिर किसे धन्यवाद दे !

मेरा अनुरोध है -
भरे चौराहे पर करबद्ध अनुरोध -
कि राज नहीं - भाषा
भाषा - भाषा - सिर्फ भाषा रहने दो
मेरी भाषा को ।

इसमें भरा है
पास-पड़ोस और दूर-दराज की
इतनी आवाजों का बूँद-बूँद अर्क
कि मैं जब भी इसे बोलता हूँ
तो कहीं गहरे
अरबी तुर्की बांग्ला तेलुगु
यहाँ तक कि एक पत्ती के
हिलने की आवाज भी
सब बोलता हूँ जरा-जरा
जब बोलता हूँ हिंदी

पर जब भी बोलता हूं
यह लगता है -
पूरे व्याकरण में
एक कारक की बेचैनी हूँ
एक तद्भव का दुख
तत्सम के पड़ोस में ।

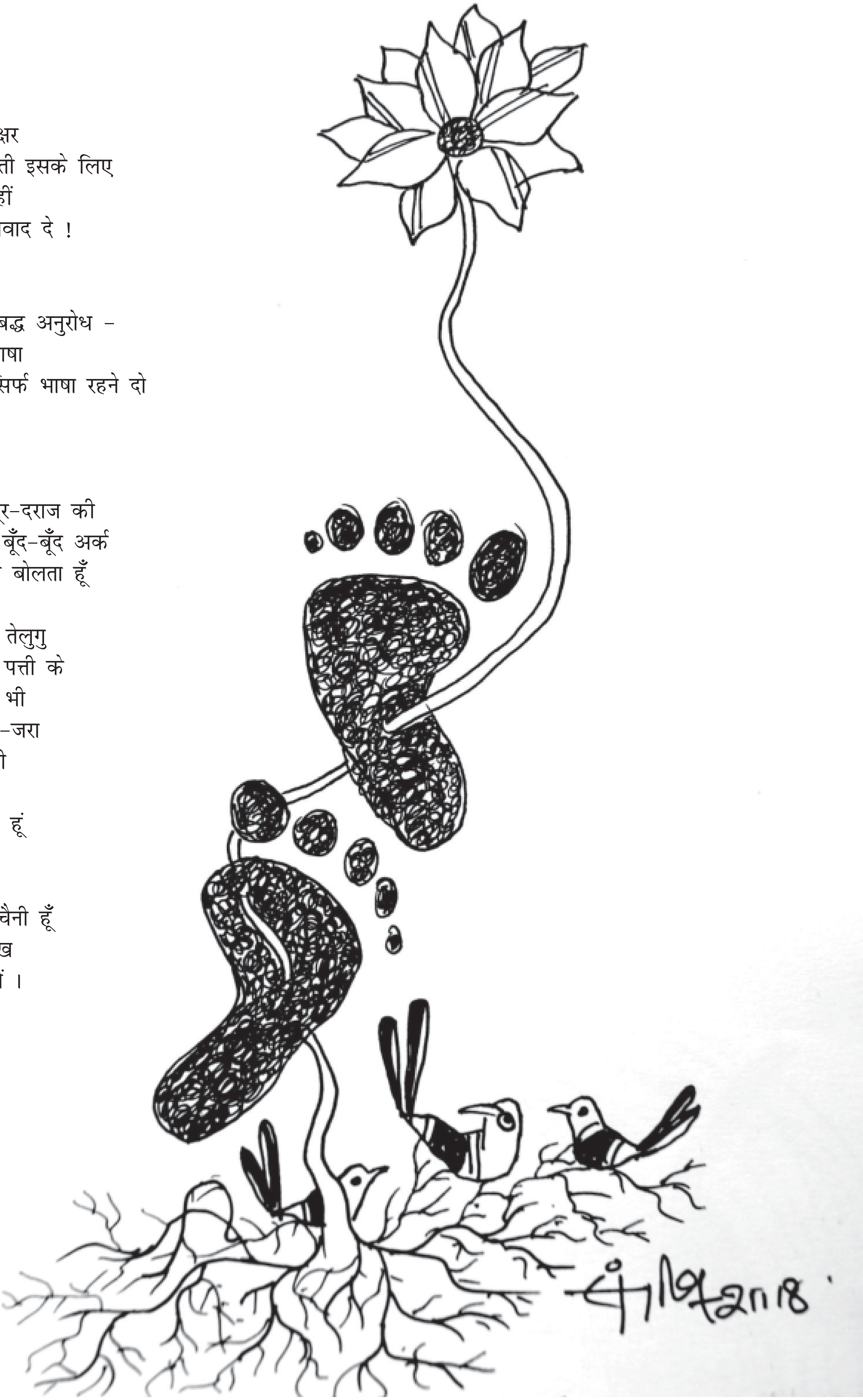

फोटो में गांधी

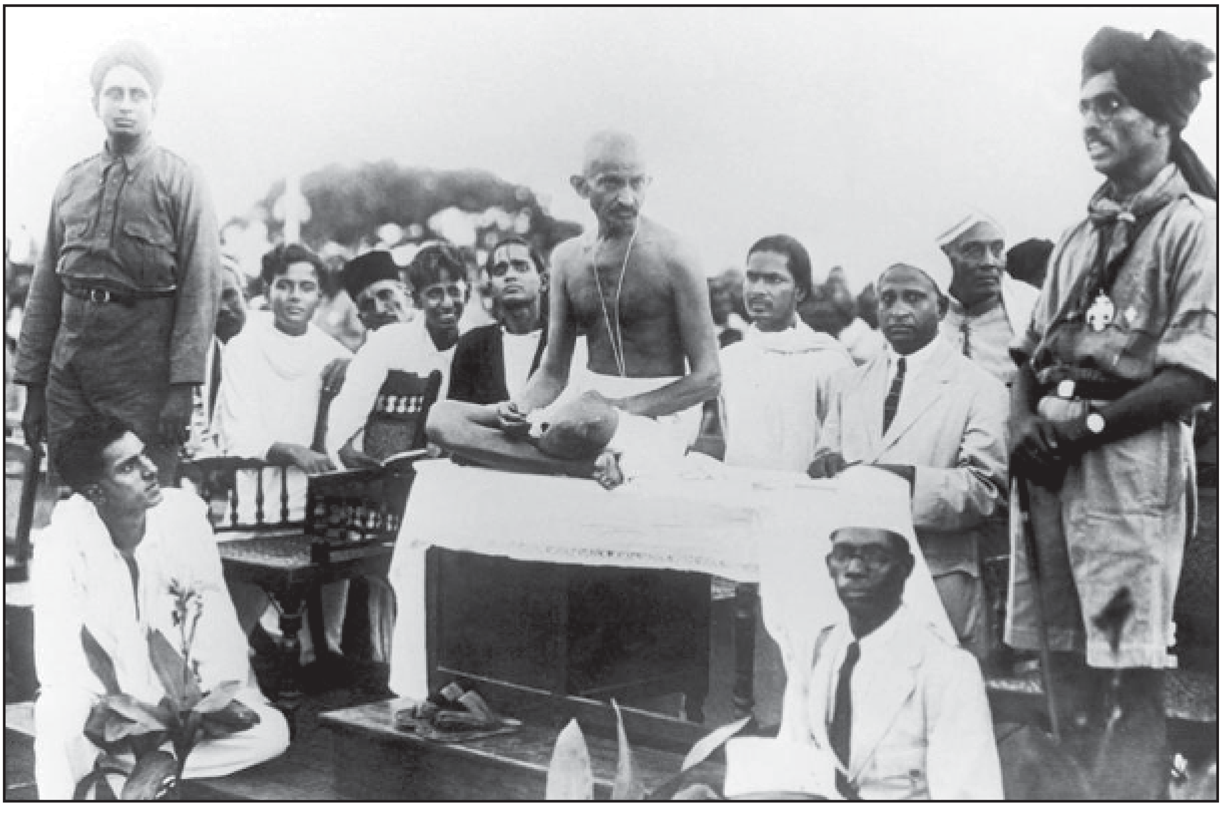

गांधी क्विज-5

प्रश्न 1. गांधीजी ने किस पुस्तक के माध्यम से गीता की व्याख्या की थी ?

1. रामचरितमानस
2. गर्भ गीता
3. गीताई
4. अनासक्ति योग

प्रश्न 2. दक्षिण अफ्रीका में अपने पहले मुकदमे में गांधीजी को कितनी फीस मिली ?

1. 105 पाउंड
2. 106 पाउंड
3. 108 पाउंड
4. 100 पाउंड

प्रश्न 3. दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी को किस दिन ट्रेन से बाहर धकेला गया था?

1. आठ जून 1908
2. सात जून 1893
3. दस जून 1893
4. एक जून 1893

प्रश्न 4. गांधीजी पहली बार दक्षिण अफ्रीका से भारत कब लौटे?

1. 18 अक्टूबर, 1896
2. 19 अक्तूबर 1897
3. 19 अक्तूबर 1896
4. 20 अक्तूबर 1896

प्रश्न 5. दक्षिण अफ्रीका में बसे भारतीयों की समस्या को लेकर गांधीजी ने एक पुस्तक लिखी थी। उस पुस्तिका का नाम था-

1. 'द ग्रीन पम्फलेट'
2. येलो पम्फलेट
3. लाल डायरी
4. दक्षिण अफ्रीका फाइल्स

प्रश्न 6. गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में टॉलस्टॉय फॉर्म की स्थापना की, उसके लिए उन्हें जमीन किसने दी ?

1. पोलक
2. कालेनबाख
3. गोखले
4. रस्किन

प्रश्न 7. गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में कितने साल गुजारे?

1. 19
2. 20
3. 21
4. 22

प्रश्न 8. बंगाल विभाजन कब हुआ ?

1. 1901
2. 1902
3. 1904
4. 1905

प्रश्न 9 निम्न में से कौनसा तत्व गांधीजी के एकादश व्रत में शामिल नहीं है?

1. अहिंसा
2. अभय
3. अपरिग्रह
4. धरना

प्रश्न 10. चंपारण में किसानों की दुर्दशा को जानने के लिए गांधीजी प्रथम बार मोतिहारी कब पहुँचे?

1. 14 अप्रैल 1916
2. 14 अप्रैल 1917
3. 15 अप्रैल 1917
4. 16 अप्रैल 1917

नोट: आप गांधी क्विज के उत्तर antimjangsds@gmail.com पर भेज सकते हैं। प्रथम विजेता को उपहार स्वरूप गांधी साहित्य दिया जायेगा।

दफ़्तर में लंगूर

रजनी शर्मा बस्तरिया

बहुत बढ़िया टाऊन शिप बसाया गया है। सामने बोर्ड में लिखा था –

''मुस्कुराइये कि आप बिजली नगर कोरबा में हैं।''

वाह, क्या बात है? अरे भई, ''हसदेव बांगो'' परियोजना का क्या हुआ ?

चल रहा है सर, अभी तक पचास हजार पेड़ काटे जा चुके हैं।

बढ़िया, पर पेड़ काटने में इतना टाइम क्यूँ लग रहा है? टाइम तो पेड़ लगा कर, उसे बड़ा करने में लगता है।

काटना तो चुटकियों का काम हैं।

सर– यह छत्तीसगढ़ का कोरबा जिला है, एक–एक पेड़ गहराईयों से अपनी जड़ों से जुड़ा हुआ है।

हूं..... तभी तो उखाड़ने में इतना वक्त लग रहा है! अरे टारगेट पूरा करना है, सरप्लस बिजली उत्पादन का। केन्द्र सरकार को रिपोर्ट भी भेजनी है। जल्दी करिए!

जी सर।

आप अभी मेरे साथ चलेंगें ए.डी.एम. आफिस!

कर्मचारी घबराते हुए, अभी सर !

हां, फाईलें देखनी है।

हजारों किलोमीटर दूर तक जहाँ तक नजरें जाती वहाँ तक हसदेव नदी किनारे पेड़ ही पेड़। बंदरों की भारी तादाद। बंदरों को देख कर आफिसर कहने लगे–ये बंदर टाऊनशिप के अहाते में कैसे आ गए ?

घूमने आये होंगे सर जी। दबी जबान में कर्मचारी बोला ।

दूसरा– अपने सहनाव को भी देखने आये होंगें।

क्या कहा, सहनाव ? तुम्हारा मतलब हम टाऊनशिप में रहने वाले सब बंदर है। कर्मचारी हकलाते हुए– नहीं सर, मेरा यह मतलब नहीं था।

''जोड़ावन'' अपनी बाड़ी के पास उदास बैठा था। सरकारी आदेश आ गया है। जमीन खाली करना है। बेदखल होना है, हसदेव बागों परियोजना के लिए। पूरा गाँव उदास, गाँव वाले उकडू बैठे थे। बंदर भी डालियों से उतर कर नीचे आ गए थे।

बाबा, दादा के जमाने से हम यही रहते आयें हैं।

सधरु– हमें नहीं चाहिए बिजली!

बंदर भी ची–चीं करने लगे जैसे कि उनका भी समर्थन हो।

कितने गाँव आयेंगे डुबान में ?

सुकालु –पटवारी बता कर गया है,

दस गाँव तो आयेंगे ही! इतने में जोड़ावन ने देखा कि एक लंगूर धम्म से कूद कर बाड़ी में आ–धमका।

चीं–चीं..... बंदरों के बीच अफरा–तफरी मच गई।

जोड़ावन ने आवाज लगाई...

ओ... ओ... ओ....

जोड़ावन की बात सुनकर लंगूर वापस पेड़ की डाल पर बैठ गया।

गाँव में ही पहाड़ की तलहटी में बसा गाँव ''लेमरु''। थोड़ी सी जमीन पर कुछ धान, चना, उगाकर लोगों की गुजर–बसर होती थी। चने के खेत में काकभगोड़ा टाँगते समय बार–बार पुतले का हाथ नीचे गिर जाता था, तो कभी मटके वाला सिर लुढ़क जाता था।

वह भी सोचता था शायद, कि जब डुबान में गाँव ही नहीं रहेगा तो कैसी खेत, कैसी फसल और कैसा काकभगोड़ा'?

'जोड़ावन'- घुटने के ऊपर धोती, एक बंडी, सिर पर साफा। बदन की पसलियाँ उभरी हुई, पूरे शरीर में कहीं भी अतिरिक्त माँस का नामो-निशान तक नहीं था। इतने में बाजू के खेत में काम कर रहे 'सुकालु' ने हँसते हुए कहा-

ओखर जगा तै ह खड़े हो जा!(उसकी जगह तू खड़ा हो जा!)

जोड़ावन ने भी पलटवार किया-

हाँ तहूं भी ललमुँहा लंगूर असन बईठ जा! (तू भी लाल लंगूर के जैसे आकर बैठ जा!)

खेतों के चने की फसल में सिर से पैर तक नमक घुला हुआ। श्रमस्वेद नख से शीश तक प्रवाहित होता हुआ चने की फसल में। नमकीन पत्तियां, नमकीन फली। पत्तियाँ इतनी सुंदर कि जैसे वसुधा ने पत्तियों वाली सुंदर बालियाँ पहन ली हों। इसके भार से भुंई के कान लोर (झुक) जाते हों। खोल के भीतर फल, जैसे की आँख बीच पुतली हो। अहा !

आस-पास के दस गाँवों में चने के पकने की खबरों की ''नमकीन चुगलियाँ हवाएं खुद-ब-खुद कर दिया करती थीं।

सुकालु - कै काठा होईस ?

(कितना सेर हुआ?) अभी नापा नही हूँ। जोड़ावन ने खीजते हुए जवाब दिया।

सुमति कहाँ है तू? जोड़ावन ने पुकारा। चल चना को लू । (काटो), सुखाओ!

हव।(हाँ)

तपती दोपहरी में चने को सुखाना। इसकी पत्तियाँ पहले स्फटिक सी हरी और सूरज के ताप में तप कर कुंदन होकर जमीन में झरती जातीं।

झट-झट.... फिर इनको फटकना ताकि पत्तियाँ झर जाएं, और धीरे-धीरे मोती सरीखे चने के दानों को चुनना। जोड़ावन ने बोरियों में भरकर चने को रखा।

कल हल्दी पानी मिलाना!

हव -सुमति ने कहा।

'सुमति'-नाक के दोनों ओर फुल्ली, जूड़े में झब्बा (पराँदा), रंग-बिरंगे फीते, चाँदी की सांटी (हार) कमर में करधन। सब मायके से मिला था। इन्हें एक भी क्षण के लिए अपने तन से वह अलग नही करती थी। ढुड्डी, नाक, घुटनों के नीचे ऐड़ी तक गोदना, बिच्छू बाना, तितली बाना, फूल, बाना। सुमति ने बोरा बिछा कर उस पर चना बिछा दिया। किवाड़ के पल्ले भिड़ा दिए गए।

बने असन ढाँक नहीं तो बेंदरा हर नसाही।

(अच्छे से बंद कर नही तो बंदर नुकसान पहुंचायेंगे।)

अनाज का कुछ हिस्सा, भूने चने को जोड़ावन ही क्या पूरा गाँव अलग से निकाल कर रखता था। ये हिस्सा बंदरों का था। चने का भोग रामसेना को लगाये बगैर निवाला नीचे नहीं उतरेगा।

सुमति आज सुबह से ही उठ गई थी। नि:संतान दंपति, रोज के कलेवा से एक निवाला बंदरों के लिए निकाल कर रखता था। दोनों के पूरे शरीर पर रामनामी गोदना। जोड़ावन ने तम्बाकू के पत्तों की देहाती बीड़ी पास वाले छत के पटाव से निकाली। सुमति की आँख से छुपा कर रखा था। सुमति ने देख लिया वह चिल्लाई-

करेजा जर जाही अत्ती मत कर!) (कलेजा जल जायेगा।)

बीड़ी पीते-पीते जोड़ावन देखने लगा। सुमति साक्षात् लक्ष्मी है। हल्दी घुला पानी सूखे चने के ऊपर छिड़कती जा रही थी। अहा! यह हल्दी पानी भी पारस ही होती है। देह पर लगे तो तन को कुंदन बना दे, चने पर पड़े तो चने के दानों की सोने के दानों सरीखा बना दे। दाने दक-दक करने लगते हैं।

जमीन को गढ्ढा करके बनाई गई भट्टी में बड़ी सी कढ़ाई के कानों तक रेत डालकर गरम करने रख दिया। हल्दी में सने दाने रेत के गर्भ में जाते ही फट-फट की आवाज से सुनहरे होकर छिलकों की कोख से निकलती जातीं। पूरे गाँव में चना फूटने की खुशबू की चुगली हवाएँ कर देती।

सुमति का चेहरा लक्ष्मी जैसी सुनहरी चँपई आभा से तप्त। जंगल तक खुशबू फैली नहीं कि, बंदरों का डेरा जोड़ावन की बाड़ी में आ धमकता। उसने नजर घुमाई। जोड़ा वन ने सुमति से पूछा- 'वह लाल मुँह वाला लंगूर

दिखाई नहीं दे रहा है। मुँह फूल गया क्या उसका भी' ?

सुमति बोली– रिसा गीस होही

(गुस्सा हो गया होगा)

जोड़ावन ओ... ओ.. की आवाज देकर पुकारने लगा।

आहा.. खाहा... कीटरे लगाई तो उसने देखा, कि सामने से वही लंगूर अपनी गर्विली चाल से चला आ रहा है। पूरे बंदरों की जमात में वह सबसे अलग तेवर वाला लंगूर। जाने बंदर इस लंगूर से खौफ क्यूँ खाते थे? जोड़ावन सोचता था– ये लंगूर ईश्वर के बनाये साँचे में जरा कम ही पके होंगे! थोड़ी देर भट्टी में और तपते तो साक्षात् मानुष बन कर ही इस धरती पर आते। गजब का ठसन है इनका! दो मुट्ठी चना उसने अकेले लंगूर की ओर बड़ा उछाल दिया। सुमति ने भी एक अँजूरी चना बंदरों की ओर उछाल दिया।

की... कीं... कीं.... करती एक बंदरिया अपने नवजात को छाती से चिपकाए उसकी ओर आती दिखी।

सुमति की छाती भी भीगने लगी और आँखें भी। गहरी उदासी छा गई।

वह मन ही मन बुदबुदाने लगी–

हमरो गोद हरियर हो जातीस।

(मेरी गोद भी हरी हो जाती)

''मृतवत्सा सुमति के पास वात्सल्यासक्ता बंदरिया, बिना डरे आ गई। कितना अद्भुत संवाद था? 'यह संवादहीन संप्रेषण सवाक और मूक के बीच'! पास आकर उसने सुमति की हथेलियों से चने के दाने लेकर बच्चे, फिर अपने मुँह में डाल दिया। सुमति की हाथों में भली सी गुदगुदाहट और चेहरे पर खुशी पसर गई ।

सुकालु ने आवाज दी–'कल शहर के ऑफिस जाना है। सब्बो गाँव वालों के जमीन जो डुबान में आयेंगे, उनका कागज–पत्तर जमा करना है।' यह सुन कर जोड़ावन ने ठंडी आह भरी। भला चँद कागजों पर जमीन को ले जाया जा सकता है क्या? मिट्टी में जब अंतिम समय मिलना होता है, तब भी कितने अनुष्ठान, जतन किए जाते हैं। तब जाकर यह भुंई अपनी गोद में आश्रय देती है। और इस भुंईया मईया को ये लोग फीते से फाईल में बाँध देंगें! बुझे मन से उसने हामी भरी।

पूरा गाँव बदहवास सा जैसे कि अपने सर्वनाश का हवन हो और इस हवन कुंड में जैसे खुद का अर्द्ध, हव्य देना हो।

''हम लोग तो साधारण गंवईय्या मानुष हैं कोई दधिचि ऋषि थोड़े हैं, जो जीते जी अपनीहाड़–माँस का भी दान दे दें।''

सुकालु–अरे कागज जमा होगा, पटवारी का सील ठप्पा लगेगा तभी तो फाईल बन कर कागज आगे बढ़ेगा ना।

सुबह हुई साफ धोती, बंडी पहनकर अंटी में खाने के लिए चना गठियाये, कान में बीड़ी खोंच कर गाँव के लोग चल पड़े कोरबा के एन.टी.पीसी. ऑफिस। अहा, किसिम–किसिम के फल, बाग, बगीचे वाला ऑफिस! सफेद, उजले कपड़े पहने लोग। गाँव के लोग ऑफिस के अहाते के पेड़ के नीचे बने चबूतरे में बैठ गए।

अर्दली–सब आ गए ?

सुकालु – आयेच्च बर पड़ीस! (आना ही पड़ा!)

कहाँ है कागज?

एक-एक करके सब देने लगे। जोड़ावन के पास आकर अर्दली ने धमकाया- और तुम्हारा कागज? जोड़ावन का मन भारी था, हाथ काँप रहे थे।

सुनाई नहीं दे रहा है क्या?

सुकालु --दे दे कागज!

काँपते हाथों से मुड़े-तुड़े कागज को उसने आगे बढ़ा दिया।

कितना गँवार है, कागज पत्तर भी ठीक से संभाल कर नहीं रख सकता। उदासी वाली चुप्पी... इतना दुःख कलेजे में छिपा कर रखा है। यही क्या कम है?

पटवारी- कितना काम है। सब कुछ इनकी तरक्की के लिए किया जा रहा है। एन.एम.डी. के कितने अहसान हैं, इन लोगों के ऊपर। पर ये लोग समझते ही नहीं। फाईल नश्ती करनी होगी, थप्पी लगेगी, पटवारी जाँच करेगा तब फाईल आगे बढ़ेगी।

अब तुम लोग जा सकते हो! अगले माह इसी तारीख को आ जाना। पूरे गाँव का हाल-बेहाल। इतनी दूर से चलकर आये हैं। हमारी जमीन, हमारा कागज और हमीं पर धौंस! - 'परानू' बड़बड़ाया।

चपरासी ने हड़काया-- क्या बोला? कुछ नहीं।

सुकालु, जोड़ावन को कोहनी मार कर कहने लगा-- तू चुप रहना, नही तो फालतू का झमेला मचेगा।

शहर से गाँव तक का रास्ता आज बहुत भारी लग रहा था। अपनी जमीन सौंप कर आना कोई मजाक है क्या?

घर में खाने की थाली को जोड़ावन ने आगे सरका दिया।

सुमति-क्यूं नहीं खा रहे हो? सुबह भी नहीं खाये थे। जोड़ावन की आँखें बरबस पेड़ पर जा टिकी। उसने लंगूर को अपनी ओर देखते पाया।

यह माह पहाड़ जैसे बीत रहा था। फिर वही झमेला, फिर वह शहर की ऊबाऊ यात्रा।

वाह, समय पर आ गये।

हव!

यहीं रुको तुम लोग। फाईलिंग हो गई है, पटवारी के दस्तखत भी हो गए हैं। अरे भाई लाखों का मुआवजा मिलेगा तो हमको भूल मत जाना। चाय-पानी का खर्च हमको भी देना।

यहीं बैठो...!

सुकालु-जोड़ावन चल ना देख कर आते हैं कि फाईल कौन से कमरे में रखी है। दोनों ने सकुचाते हुए पूरे ऑफिस का चक्कर लगाया। किनारे वाले कमरे की खिड़की से देखा तो ऑफिस में सफेदपोश क्लर्क इधर-उधर आ जा रहे थे। अर्दली को देखकर जोड़ावन बोला- ऐहीच्च कमरा में होगा ।

अर्दली से नजरें मिलीं, अर्दली ने विजयी भाव से इशारा किया, सामने के टेबल में बैठे पटवारी की ओर। पटवारी के मुँह में पान, आँख में चश्मा, पांचों ऊंगलियों में अंगूठियाँ, कलाई में घड़ी, टेबल पर एक के ऊपर एक रखी फाईलें,।

अर्दली ने खिड़की से झाकते सुकालु, सुधरु, जोड़ावन को दिखाते हुए एक फाईल लहराई...। उसने ईशारा किया यह तुम्हारे गाँव की ही फाईल है, आगे जायेगी।

सुकालु- जोड़ावन जब तक बुलव्वा नहीं आयेगा तब तक तो भीतर नहीं जा सकते ना।

ऑफिस में सारे लोग सिर झुकाए कुछ लिखते दिख रहे थे। कुछ फुदक रहे थे। जोड़ावन सोचने लगा- इनमें और बंदरों में क्या फर्क है। ''डुगडुगी बजती है और ये नाचते हैं।''

नाच मेरी जान कि पैसा मिलेगा,

यहाँ कदरदान तुझे ऐसा मिलेगा...... पास के किसी ट्रांजिस्टर में यह गाना बज रहा था।

''फाईल गई तो गाँव, जमीन, जंगल, खेत सब चला जायेगा, अपनी पहचान भी। घूमते-घूमते थककर वापस उसी पेड़ के नीचे आकर बैठ गये। गला सूख रहा था। और मन भी। अचानक जोर-जोर से आवाज आई---

अरे, देखो। अरे, पकड़ो।

ये यहाँ कैसे घुस आय, काटेगा, कितना खतरनाक दिख रहा है?

अरे, भागो! यह तो खिड़की से अंदर घुस रहा है।

अरे, वहाँ अलमारी के ऊपर चढ़ गया। टेबल पर कूद रहा है। फोन लगाओ।

सर, कोरबा टाउनशीप के ए.डी.एम. बिल्डिंग से बोल रहा हूँ।

हाँ–बोलो, हम वन विभाग से बोल रहे हैं, क्या हुआ?

सर वो दफ्तर में घुस आया है।

अरे, कौन ?

लाल मुँह वाला?

भयानक अरफा–तरफी मची थी। उसने आफिसर की ओर देखकर अपने नुकीले, दाँत दिखाये।

आफिसर– फौरन आस–पास के किसी जानकार को बुलाओ। वन विभाग दस्ता के आते रेस्क्यू करते तो बहुत समय लगेगा। ऑफिसर पसीना–पसीना हो गया। नुकीले पंजे पैने, दाँत, घूरती आँखों से वह उसकी ओर ही देखे जा रहा था।

अरे, जल्दी करो, जल्दी बुलाओ!

अरे वह दफ्तर में घुस आया है–।

वन विभाग -- कौन घुसा है, कहाँ घुसा है?

सर एन.टी.पी.सी. कोरबा टाउनशिप के ए.डी.एम. ऑफिस में लंगूर घुस आया है।

उधर से आवाज आई– आप लोग उनके ऐरिया में घुसे होंगे, और वैसे भी ऑफिस में क्या लंगूरों की कमी है क्या ?

सब बातें फोन पर करेंगे कि कुछ करेंगे भी।

ठीक है सर्प मित्र सारथी को रेस्क्यू के लिए भेज रहा हूँ।

साँपों का रेस्क्यू करने वाला भला लंगूर का रेस्क्यू कैसे कर पायेगा ?

उत्तर आया– लंगूर, साँप जितने जहरीले थोड़े होते हैं, और इंसान से बढ़कर जहरीला कोई हो सकता है क्या?

ऑफिसर की घिघ्घी बँध गई। सारे कर्मचारी धीरे–धीरे किनारे होते गए, पर वह लंगूर ऑफिसर की टेबल पर धम्म से जाकर बैठ गया। ऑफिसर की थरथरी बँध गई।

लाल मुँह, काला शरीर, नुकीले नाखुनों वाले पंजे, फक्क नुकीले दाँत।

वह पीछे हटते गये। लंगूर कूद–कूद कर पूरे टेबल पर उत्पात मचा रहा था।

शोर सुनकर जोड़ावन ने खिड़की से झांका तो सन्न रह गया। वही लंगूर, उसके हाथों में फाईल।

ददा–रे... रे ... रे।

ऑफिसर ने पास रखा डंडा उठा लिया था। वह लंगूर पर वार करना ही चाह रहे थे कि ओ.... ओ... ओ... की चिरपरिचित आवाज सुनाई दी। लंगूर पीछे पलटा, जोड़ावन से आँखें मिलीं और वह वापस खिड़की से निकल कर जंगल में ओझल हो गया...।

अगले दिन स्थानीय अखबार में खबर छपी थी–

''एन.टी.पी.सी. कोरबा के टाउन शिप स्थित ए.डी. एम. बिल्डिंग में उस समय अफरा–तफरी मच गई जब एक लंगूर भोजन पानी की तलाश में जंगल से भटकर यहाँ के दफ्तर में घुस गया। लंगूर को रेस्क्यू कर पकड़ने के बाद आबादी से दूर जंगल में छोड़ा गया। तब जाकर ऑफिसरों ने राहत की साँस ली। गर्मी बढ़ते ही जंगल में भोजन, पानी की उपलब्धता नहीं रहने से कई बार वन्य प्राणी आबादी क्षेत्र की ओर रुख करते हैं। लेकिन इस बार ऑफिस में ही घुस आये। कंपनी के अफसरों ने इसकी सूचना सर्प मित्र जितेन्द्र सारथी को दे दी। उनकी टीम के सदस्य बबलू मरवा भी मौके पर पहुंचे।

अंत में लिखा था--

'लंगूर ने फाइलों को तहस–नहस कर दिया और जाते–जाते कुछ फाइलों को भी ले कर चला गया। साक्ष्य, जमीन के कागजात, मुआवजे का विवरण सभी उन्हीं फाईलों में थे। अत: हसदेव बागों परियोजना तत्काल प्रभाव से स्थगित की जाती है।'

संपर्क:
116 सोनिया कुंज
ज्ञानाश्रय स्कूल के अपोजिट
नगर निगम कॉलोनी, रायपुर छत्तीसगढ़
मो. 9301836811

गतिविधियाँ

हर घर तिरंगा पदयात्रा से बना देशभक्ति का माहौल

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति ने 9 अगस्त, 2024 को भारत छोड़ो आंदोलन की 82वीं वर्षगांठ के अवसर पर "हर घर तिरंगा पदयात्रा" का आयोजन किया और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के आह्वान पर हर घर तिरंगा अभियान को आगे बढ़ाया। इस अवसर पर संस्कृति मंत्रालय की संयुक्त सचिव श्रीमती अमिता प्रसाद साराभाई द्वारा हरी झंडी दिखाकर पदयात्रा को रवाना किया गया।

पदयात्रा गांधी वाटिका, राजघाट से शुरू होकर लाल किले के पास चरती लाल गोयल हेरिटेज पार्क में समाप्त हुई। 800 से अधिक स्कूली बच्चों ने इसमें भाग लिया। इस पदयात्रा में मार्चिंग बैंड की धुन के साथ भारत माता की जय के नारों ने माहौल को देशभक्ति के रंग में रंग दिया। जगह जगह स्थानीय लोगों ने पुष्पवर्षा से पदयात्रियों का स्वागत किया। यह कार्यक्रम देशभक्ति के जोश से भरा हुआ था, जिसमें "हर घर तिरंगा, घर घर तिरंगा" जैसे नारे लगाए गए। पदयात्रा से पहले, गांधी दर्शन राजघाट में हर घर तिरंगा विषय पर चित्रकला एवं प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिताएं आयोजित की गईं, जिनमें बच्चों ने अत्यंत उत्साह के साथ भाग लिया। मुख्य अतिथि अमिता सारभाई ने उपस्थित लोगों को हर घर तिरंगा अभियान की शपथ दिलाई और सभी से तिरंगे का सम्मान करने की अपील की।

कार्यक्रम के दौरान गांधी हर्बल पार्क का उद्घाटन श्रीमती अमिता सरभाई, डॉ. अनुराधा शर्मा और डॉ. ज्वाला प्रसाद द्वारा किया गया।

गांधी दर्शन में धूमधाम से मना स्वतंत्रता का उत्सव

78वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर गांधी स्मृति एवम् दर्शन समिति ने 15 अगस्त को स्वतंत्रता, एकता, राष्ट्रीय एकीकरण, विविधता और सबसे बढ़कर देशभक्ति की भावना को समेटे हुए सांस्कृतिक कार्यक्रमों की एक श्रृंखला के साथ स्वतंत्रता सेनानियों के बलिदान का स्मरण किया। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि, सामाजिक विचारक और प्रसिद्ध लेखक प्रोफेसर राजकुमार भाटिया थे, जिन्होंने समिति के निदेशक डॉ. ज्वाला प्रसाद के साथ मिलकर तिरंगा फहराया। इस मौके पर प्रोफेसर भाटिया ने एक पेड़ भी लगाया, इसे मातृभूमि को समर्पित किया और भारत सरकार की 'एक पेड़ माँ के नाम' पहल का समर्थन किया।

समारोह में अभिज्ञान नाट्य एसोसिएशन के कलाकारों ने स्वतंत्रता की भावना का जश्न मनाते हुए अपने संगीतमय प्रस्तुतीकरण से दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया। इसके अलावा श्री उदय नारायण सिंह के नेतृत्व में अबीरा समूह के कलाकारों ने स्वतंत्रता संग्राम को दर्शाते हुए विभिन्न गीत प्रस्तुत किए तथा स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गांधी की महत्वपूर्ण भूमिका पर भी प्रकाश डाला। श्री हिमांशु कुमार द्वारा प्रस्तुत देशभक्ति गीतों तथा डॉ. गोरख प्रसाद मस्ताना की भावपूर्ण कविताओं ने देशभक्ति के जोश को और अधिक बढ़ा दिया। गांधी दर्शन परिसर स्वतंत्रता की गूंज तथा मातृभूमि की महिमा से गूंज उठा, विशेष रूप से 'हर घर तिरंगा अभियान' के माध्यम से, लोगों के उत्साह और उमंग ने स्वतंत्रता की अदम्य भावना को स्पष्ट रूप से चित्रित किया। कार्यक्रम के दौरान डॉ. ज्वाला प्रसाद ने मुख्य अतिथि प्रो. राज कुमार भाटिया का स्वागत किया तथा उन्हें गांधी चरखा तथा समिति की मासिक पत्रिका अंतिम जन भेंट की। इस अवसर पर प्रशासनिक अधिकारी श्री संजीत कुमार तथा समिति के कार्यक्रम अधिकारी डॉ. वेदाभ्यास कुंडू ने भी कई कलाकारों का स्वागत किया। प्रोफेसर भाटिया ने सभी प्रतिभागी बच्चों को आभार स्वरूप गांधी

नोटबुक भेंट की, जिसमें बच्चों में अच्छी आदतें विकसित करने के बारे में भी जानकारी दी गई है। कार्यक्रम के सफल समापन पर श्री संजीत कुमार ने धन्यवाद ज्ञापन प्रस्तुत किया।

कार्यक्रम समिति ने किया बुनियादी विद्यालयों का दौरा

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के कार्यक्रम समिति के सदस्य श्री धर्मवीर शर्मा एवं श्री सतपाल भाटिया ने 22-23 अगस्त, 2024 को बिहार के चंपारण के बेतिया एवं सिरसिया अड्डा के बुनियादी विद्यालयों का दौरा किया तथा विद्यालय के शिक्षकों एवं अधिकारियों से मुलाकात की। इस अवसर पर उन्होंने विद्यालय द्वारा समय-समय पर की जाने वाली पहलों पर छात्रों से बातचीत भी की। इस अवसर पर गांधी स्मृति के निदेशक डॉ. ज्वाला प्रसाद भी उपस्थित थे, जिन्होंने दोनों विद्यालयों की गतिविधियों पर प्रधानाचार्य एवं शिक्षकों से चर्चा की। समिति के कार्यक्रम अधिकारी डॉ. वेदाभ्यास कुंडू भी उपस्थित थे। इस अवसर पर "एक पेड़ माँ के नाम" अभियान के तहत वृक्षारोपण किया गया।

फोटो: राकेश शर्मा एवं गणेश

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति

हमारे आकर्षण

गांधी स्मृति म्यूजियम (तीस जनवरी मार्ग)

* गांधी स्मृति म्यूजियम
* डॉल म्यूजियम
* शहीद स्तंभ
* मल्टीमीडिया प्रदर्शनी
* महात्मा गांधी के पदचिन्ह
* महात्मा गांधी का कक्ष
* महात्मा गांधी की प्रतिमा
* वर्ल्ड पीस गोंग

गांधी दर्शन (राजघाट)

* गांधी दर्शन म्यूजियम
* क्ले मॉडल प्रदर्शनी
* गांधीजी को समर्पित रेल कोच प्रदर्शनी
* गेस्ट हाउस और डॉरमेट्री (200 लोगों के लिये)
* सेमीनार हॉल (150 लोगों के लिये)
* कॉन्फ्रेंस हॉल (300 लोगों के लिये)
* प्रशिक्षण हॉलः (80 लोगों के लिये)
* ओपन थियेटर
* राष्ट्रीय स्वच्छता केन्द्र
* गेस्ट हाउस और डॉरमेट्री

(डॉ. ज्वाला प्रसाद)
निदेशक

प्रवेश निःशुल्क (प्रातः 10 बजे से सायं 6.30 बजे तक), सोमवार अवकाश
हॉल व कमरों की बुकिंग के लिये संपर्क करें– ईमेलः 2010gsds@gmail.com, 011-23392796

gsdsnewdelhi www.gandhismriti.gov.in

RNI NO. DELHIN/2018/76242

‘‘आप मुझे जो सजा देना चाहते हैं, उसे कम कराने की भावना से मैं यह बयान नहीं दे रहा हूँ। मुझे तो यही जता देना है कि आज्ञा का अनादर करने में मेरा उद्देश्य कानून द्वारा स्थापित सरकार का अपमान करना नहीं है, बल्कि मेरा हृदय जिस अधिक बड़े कानून से-अर्थात अन्तरात्मा की आवाज को स्वीकार करता है, उसका अनुसरण करना ही मेरा उद्देश्य है।’’

मो.क.गांधी

(मोहनदास करमचंद गांधी)

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली
(एक स्वायत्त निकाय, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार)

प्रकाशक - मुद्रक : स्वामी गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के लिए पोहोजा प्रिंट सोल्यूशंस प्रा. लि., दिल्ली - 110092 से मुद्रित तथा गांधी दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली-110092 से प्रकाशित।